UNIVERSAL LIBRARY
OU_186486
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H.523/Bh.57A Accession No. H. 1691

Author भटनागर, रामरतन

Title आकाश की कथा

This book should be returned on or before the date last marked below.

वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि प्रकाश नही होता या किसी प्रकार हम तक नहीं पहुँच पाता तो हम किसी वस्तु को नहीं देख सकते। यह सृष्टि हमारे लिए अंधकारपूर्ण रहती। जब किसी वस्तु पर किरणें पड़कर हमारी आँखों तक पहुँचती हैं तब वह वस्तु हमें दीखती है। जिस वस्तु का जैसा रंग दीखता है वह वस्तु उस प्रकार की किरणों को छोड़कर शेष किरणों को चूस लेती है। जब तक प्रकाश किसी वस्तु पर न पड़े, तब तक न प्रकाश दीखता है, न वह वस्तु! यही कारण है कि जब कमरे मे धूल होती है, तो दरवाज़े के छोटे-छोटे छेदों में से प्रकाश की सीढ़ियाँ फ़र्श पर उतरती जान पड़ती हैं। यदि धूल नही होती तो हम प्रकाश के मार्ग को नहीं देख पाते।

वायुमंडल में जलवाष्प हैं। सूर्य की किरणें इन जलवाष्पों पर पड़ती हैं और फिर प्रतिदीप्त होकर हम तक पहुँचती हैं। जलवाष्प नीले रंग की किरणों को छोड़कर शेष किरणों को रोक लेता है। इसलिए आकाश नीला दिखाई पड़ता है। यदि आकाश में धूल तथा जलवाष्प न हो तो आकाश बिलकुल काला ही काला दीखे। हमारे वायुमंडल से बाहर निकलकर, जलवाष्प का चिह्न भी नहीं मिलेगा। इसलिए यदि हम अपने वायुमंडल से बाहर निकल जायें तो हमें चारों ओर अंधकार का महासमुद्र ही दिखलाई दे। वास्तव में सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों के बीच में जो आकाश फैला हुआ है, वह नीले रंग का नहीं है।

फिर यह नीला आकाश रंग कैसे बदलता है? सूर्य के उदय और अस्त होने के समय प्रायः सूर्य लाल क्यों दीखा करता है?

उषाकाल और गोधूलि-बेला में सूर्य क्षितिज के नीचे रहता है। अतः सूर्य के प्रकाश के सातों रंग पूर्णरूप से हमारे पास नहीं

आ पाते। हमारे पास तक पहुँचते-पहुँचते सूर्य की किरणें विभाजित हो जाती हैं। विभाजित होने का कारण यह है कि उन्हें धूल की मोटी तह में से गुज़रना पड़ता है। इसी लिए आकाश में यह रंगों के जादू का तमाशा लगा रहता है। इस धूल की मोटी तह के कारण ही सूर्य भी उज्ज्वल श्वेत रंग का नही दिखलाई पड़ता, वरन् लाल दीखता है।

रात के समय सूर्य पृथ्वी के दूसरे भाग में (हमारी विपरीत दिशा में) होता है। उसकी किरणें हम तक नहीं आ सकती। तब भी छोटी लहरों की किरणें किसी प्रकार मुड़कर हम तक आ सकती हैं। सूर्य के लाल, नारंगी, पीले और हरे रंग की लहरें बहुत बड़ी होती हैं। आसमानी, नीले और कासनी रंग की लहरे छोटी होती है। इस प्रकार जो छोटी लहरें मुड़कर हमारे पास आती हैं, उनका रंग नीला होता है। अतः रात को आकाश हमें नीला दिखलाई देता है।

सुबह-शाम होनेवाले रंगों के तमाशे के सिवा दिन का एक आश्चर्य और है—इन्द्रधनुष। यह वर्षा के पहले या बाद दिखाई देता है। इसकी विशेषता यह है कि यह सूर्य की विपरीत दिशा में होता है। प्रातःकाल को सूर्य पूर्व में रहता है, अतः इन्द्रधनुष पश्चिम में दिखलाई देता है। सायंकाल को सूर्य पश्चिम में आ जाता है, अतः इन्द्रधनुष पूर्व में दीख पड़ता है। इसमें सात रंग—कुछ धुंधले, कुछ स्पष्ट—दिखलाई पड़ते हैं—लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंजनी या कासनी।

इन्द्रधनुष क्यों?

पहले समय में जब बिजली की रोशनी नहीं थी तब बड़े घरों में भाड़ों-फानूसों का प्रकाश किया जाता था। भाड़ में तीन पहलूवाले

अनेक लम्बे शीशे लटकते होते थे। इसे आँख के सामने रखने से प्रत्येक वस्तु रंगीन दिखलाई पड़ती है। बात यह है, त्रिपार्श्व मे देखने से प्रकाश के सातों रंग स्पष्ट हो जाते हैं। वर्षा की बूँदें भी त्रिपार्श्व का काम करती हैं।

वर्षा होने से आकाश में जलकण बिखर जाते है। जब सूर्य की किरणें इन गोल बूँदों पर पड़ती है, तो श्वेत रंग का सात रंगों में विभाजन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त वर्षा के महीनों मे बादलों में भी अनेक रंग दीख पड़ते हैं। इनका कारण भी यही है। जल-बूँदें या हवा में लटके हुए वाष्पविदु प्रकाश के श्वेत रंग का विभाजन कर देते हैं। इस प्रकार प्रकृति बादलों के नीचे हरे और लाल रंग की पट्टियाँ लगा देती है।

यह हुई दिन की बात।

दिन में आकाश मे कुछ दिखलाई नहीं पड़ता और रात में सहस्रों तारे चमकते दिखाई पड़ते है। इससे यह न समझना चाहिए कि दिन का आकाश शून्य है। सूर्य-ग्रहण के समय में दिन में तारे दिखलाई देते है। कितने ही पतंगबाज़ दिन में हीं तारे देख लेते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दिन में भी तारे रहते हैं परन्तु सूर्य के प्रचण्ड ऐश्वर्य के सामने उनकी ज्योति मन्द पड़ जाती है। बालसूर्य के उगते ही तारे और चन्द्रमा एक-एक करके हीनज्योति होने लगते हैं। वास्तव में वे जाते कहीं नहीं। दूरदर्शक से हम उन्हें दिन में भी देख सकते हैं। कभी-कभी सूर्योदय के बहुत बाद तक दो एक प्रकाशमान तारे और चन्द्रमा दिखाई देते रहते हैं; कभी-कभी सूर्यास्त के पहले भी यही दशा होती है।

आकाश के अनेक चमकते हुए पिंडों में से हम सूर्य और चन्द्रमा से तो बहुत ही अच्छी तरह परिचित हैं। वे जैसे हमारे बहुत पास के कुटुम्बी हों। सूर्य के उदय और अस्त होने के सम्बन्ध में और चन्द्रमा की कलाओं के विषय में मनुष्य का ज्ञान बहुत प्राचीन है। इन्ही के अध्ययन से उसने अनन्तकाल को वर्ष, मास और दिन में विभाजित किया है।

हमारे देश के ज्योतिषियों ने आकाशमंडल (खगोल) को १२ राशियों में बाँटा है जिनमें सूर्य वर्ष भर में चक्कर लगा लेता है। प्रत्येक राशि में सूर्य एक महीने रहता है। उन राशियों के नाम इस प्रकार हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुष, मकर, कुंभ और मीन। उन्होंने खगोल को २७ नक्षत्रों में भी बाँटा है जिनमे महीने भर में चन्द्रमा घूमता है। ये २७ नक्षत्र ये हैं—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसुः, पुष्य, अश्लेष, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्टा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती। वास्तव में आकाश-मंडल का यह विभाजन चन्द्र-राशि स्थापित करने जैसा हुआ। प्रत्येक नक्षत्र-राशि मे अनेक नक्षत्र (तारे) होते हैं जिनकी संख्या एक से लेकर सौ तक हो सकती है। नक्षत्र के सबसे उज्ज्वल तारे को योग-तारा कहा गया है। इन्हीं राशियों और नक्षत्रों में ग्रहों और उपग्रहों के प्रवेश और यात्रा को भारतीय ज्योतिषियों ने प्रमुखता दी है और इसी बात को लेकर दिन, तिथि, नक्षत्र, योग और करण की गणना की प्रणाली चलाई है। हमारे यहाँ के पंचांगों का आधार वास्तव में नक्षत्रों और ग्रहों-उपग्रहों का अध्ययन है।

कदाचित् आप आकाश के कुछ तारों से परिचित होना चाहेंगे। हमारे देश में वर्ष के कई महीने आकाश निर्मल रहता है, इसलिए यहाँ ग्रहों और नक्षत्रों का अध्ययन इतना कष्टसाध्य नहीं है जितना अन्य देशों में। नीचे हम कुछ विशेष तारों के सम्बन्ध में लिखेंगे :—

१—सप्त-ऋषि—इन सात तारों को जो आकाश में पास-पास उगते हैं एक ही नाम से पुकार लिया जाता है। फाल्गुन की रात में उत्तर-पूर्व की दिशा में इन्हें सुगमता से ढूँढा जा सकता है। इन सात तारों का नामकरण भारतीय ऋषियों के नाम पर किया गया है। ये नाम ये हैं—क्रतु, पुलह, अत्रि, पुलस्त्य, अंगिरा, वशिष्ठ और मरीची। इनमें पहले चार लगभग समकोण बनाते हैं और पिछले तीन अत्रि से खींची हुई कुछ तिरछी रेखा पर स्थित हैं।

२—ध्रुव-तारा—सप्तर्षि के समकोण के दो तारों, पुलह और क्रतु को मिलाती हुई सीधी रेखा खींची जाय तो कुछ दूर उत्तर दिशा में एक प्रकाशमान नक्षत्र मिलेगा। क्रतु और पुलह में जितना अन्तर है उससे यह पाँचगुनी दूरी पर स्थित है। इसके समीप कोई प्रकाशमान नक्षत्र नहीं है, इससे इसके पहचानने में भूल नही की जा सकती।

प्राचीन समय में जब दिशा-निर्देशक यंत्र नहीं बने थे, नाविक इसी तारे के सहारे दिशा खोजते थे। इसका नाम ध्रुव इसी लिए है कि वह अपनी दिशा नहीं बदलता। यह सदैव उत्तर में दिखाई पड़ता है। अन्य तारे पृथ्वी की परिक्रमा के कारण समय-समय पर अपने स्थान से हटे जान पड़ते हैं।

३—लघुसप्तर्षि—वास्तव में हम ध्रुवतारे को एक अन्य तारा-समूह का सदस्य मान सकते हैं। ध्रुव-समेत ये तारे साथ हैं और इनका आकार भी सप्तर्षि जैसा दीख पड़ता है। सप्तर्षि में जो स्थान मरीची

का है, वही स्थान लघुसप्तर्षि में ध्रुव का है। यह भी समकोण के एक तारे से खिची हुई रेखा पर स्थित तीन तारो मे से अन्तिम है। ध्रुवतारे के सहारे लघुसप्तर्षि को पहचान लेना कठिन नही है।

४—कश्यपमंडल—इस मंडल में ५ प्रमुख तारे है जो हिन्दी स्वर 'उ' की तरह फैले हुए है। ये ध्रुवतारे से इतनी ही दूर है जितनी दूर सप्तर्षि है, परन्तु ये उनसे ठीक विपरीत दिशा मे हैं।

५—ब्रह्महृदय, अग्नि, प्रजापति—ये भी उत्तर के तारे है जो आकाशगंगा के पास पड़ते है। ये मृगशिरा नक्षत्र-समूह और ध्रुवतारे के बीच मे भी है और यदि मृगशिरा, आर्द्रा अथवा अग्रहायण नक्षत्रों मे भी किसी से भी परिचय हो तो इन्हे पहचानना कठिन नही है। यदि अत्रि और ऋतु को मिलाती हुई रेखा आगे बढाई जाय तो ब्रह्महृदय लगभग उसी रेखा पर मिल जायगा। इसके पूर्व मे प्रजापति और दक्षिण मे अग्नि है। यदि ध्रुव और ब्रह्महृदय को एक रेखा से मिला दिया जाय तो प्रजापति उसकी समानान्तर रेखा पर उतनी ही दूर होगा। ये तारे हमारे आकाश में लगभग एक ही दिशा में और लगभग एक ही गति से चलते रहते है।

६—अभिजित—यह अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र ज्येष्ठ मास की रात मे उत्तर-पूर्व की ओर और मार्गशीर्ष की रात में उत्तर-पश्चिम की ओर क्षितिज से ऊपर उठा दिखलाई पड़ता है। पुलस्त्य और अत्रि को जोड़नेवाली रेखा को आगे बढ़ाया जाय तो यह उसके पास ही पड़ेगा। इसके पास ही, क्षितिज से मिले हुए पाँच तारे है जिनसे आधुनिक ज्योतिषियों ने हंस-समूह का निर्माण किया है। ज्येष्ठ मास में समूह ठीक उत्तर-पूर्व में दिखाई देता है।

७—लुब्धक या मृगव्याध—यह दक्षिण का तारा है। इस जैसा

उज्ज्वल नक्षत्र आकाश के इस भाग मे नहीं है। अपने समूह के तारों में तो इसका प्रथम स्थान है ही। फाल्गुन की रात मे हम इसे अगस्त के ऊपर चमकता हुआ देख सकते हैं।

८—आर्द्रा, अग्रहायण, मृगशिरा और रोहिणी—ये सब दक्षिण के प्रकाशमान नक्षत्र है। लुब्धक, मृगशिरा और रोहिणी लगभग एक ही सीधी रेखा मे पड़ते है। इस रेखा के उत्तर में रोहिणी है और दक्षिण में लुब्धक।

९—अगस्त—यह उज्ज्वल तारा ध्रुव के ठीक दक्षिण में पड़ता है। यह शरद्-ऋतु मे उदय होता है।

१०—पुष्य, मघा, सिह, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी—यदि ऋतु और पुलस्त्य को एक रेखा से मिला दिया जाय और उसे आगे-पीछे बढ़ाया जाय तो उसके एक सिरे पर ध्रुव और कश्यपमंडल रहेंगे, दूसरी ओर ये तारे। पुष्य, मघा और सिह इस रेखा के एक ओर होंगे, पूर्वा और उत्तरा-फाल्गुनी दूसरी ओर।

११—स्वाति—उत्तर दिशा मे अभिजित् और ब्रह्महृदय को छोड़-कर यह सबसे अधिक उज्ज्वल नक्षत्र है। फाल्गुन रात में यह क्षितिज के पास दिखलाई पड़ता है। यदि अंगिरा, वशिष्ठ और मरीची को एक रेखा से मिलाकर उसे दुगना कर दिया जाय तो वह रेखा इस तारे तक पहुँच जायगी।

अब हम आकाश के एक और प्रकार के पिंडों के सम्बन्ध में लिखेगे। इन्हे ग्रह कहते हैं।

नंगी आँखों से आकाश में कुछ पिड ऐसे भी दिखाई देते है जो निरन्तर घूमते रहते हैं। उनका स्थान निश्चित नहीं है। ये ग्रह है। गणित-द्वारा यह बताया जा सकता है कि इनमें से कौन-सा पिंड कब

उदय होगा और आकशा के किस भाग में। ये पिड ग्रह है। वास्तव में ये पृथ्वी जैसे पिड है जो हमारी पृथ्वी की ही तरह सूर्य की परिक्रमा किया करते है। ये ग्रह है—बुद्ध, शुक्र, मगल, बृहस्पति और शनि। स्वयं हमारी पृथ्वी ग्रह है परन्तु प्राचीन ज्योतिषी इसे ग्रहों मे स्थान नही देते थे।

इन ग्रहों, तारों के अतिरिक्त हमें आकाश में एक और अद्‌भुत वस्तु भी मिलती है—'आकाशगंगा'। क्षितिज के एक किनारे से दूसरे किनारे तक दूध की एक नदी बहती दिखलाई देती है। लोग इसकी ओर इशारा करके कहते हैं—"यह स्वर्ग की गंगा" है; इसमें स्वर्ग के देवता नहाते है। भगीरथ महाराज बड़ी तपस्या के बाद इस गंगा को पृथ्वी पर उतार लाये हैं। इसी प्रकार की एक गंगा पृथ्वी के नीचे है।

आकाश के आश्चर्यों को समाप्त करने से पहले हमे 'चन्द्रधनुष' की बात भी लिखनी होगी। कभी-कभी चन्द्रमा को एक बड़ा रंगीन चक्कर घेरे रहता है। इसका कारण भी वही है जो इन्द्रधनुष का—जलवाष्प, में होकर आने से प्रकाश की किरणे सात रंगों में विभाजित हो जाती हैं। चन्द्रमा का प्रकाश हलका होता है, अतः सभी रंग स्पष्ट नही हो पाते। वह सूर्य से छोटा है, इसलिए उसका पूरा चक्कर दिखलाई पड़ता है, इन्द्रधनुष की तरह आधा या कम नहीं।

इस प्रकार हमने आकाश से अपना परिचय कर लिया।

उसमें चार तरह के पिंड हैं—सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ग्रह। इनके अतिरिक्त हमें अकाशगंगा के दर्शन होते हैं। दूरदर्शक से देखने पर आकाशगंगा में काले धब्बे से जान पड़ते हैं। ये धब्बे "नीहारिकायें" हैं। वास्तव में

ये खुली हुई खिड़कियाँ हैं जिनमें होकर हम अपने ब्रह्मांड से बाहर के आकाश से परिचय प्राप्त करते है।

ब्रह्माण्ड क्या है? नक्षत्रों, सूर्यों और ग्रहों-उपग्रहों को मिलाकर जो संसार बनते है वे ब्रह्माण्ड कहलाते है। सूर्य भी एक नक्षत्र है। नक्षत्र लगभग स्थिर है। ग्रह उन्हें घेरकर घूमते हैं। किसी नक्षत्र और उसके ग्रहों को एक शब्द मे हम "सौरजगत्" कह सकते हैं। हमारे अपने सौर जगत् का नायक हमारा सूर्य है और बुद्ध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण और कुबेर उसकी परिक्रमा करते है। इनमें से कितने ही पिडों (ग्रहों) को घेरकर अन्य ग्रह परिक्रमा करते हैं; उन्हें उपग्रह कहते हैं। इन सब पिंडों की दूरी इतनी है कि कल्पना भी काम नहीं करती।' हम उसे किसी भी प्रकार मन में नहीं बिठा सकते। इन सब पिंडों के बीच मे क्या है? यही हमारा आकाश! यह आकाश हमारे ब्रह्माण्ड को भरे हुए है। हमारे ब्रह्माण्ड से बाहर भी यह आकाश फैला हुआ है। उसमें अनेक ब्रह्माण्ड और अनेक विश्व हैं।

परन्तु आकाश क्या है?

हम इसका उत्तर नहीं दे सकते। अब भी वह हमारे लिए रहस्य है।

प्राचीन विद्वानों ने आकाश को सर्वव्यापक और तत्त्वों में अत्यन्त सूक्ष्म माना है। सब तत्त्वों का मूलकारण भी वही है। अन्त होने पर सब तत्त्वों की परिसमाप्ति भी आकाश-तत्त्व मे ही है।

आधुनिक विज्ञान भी कहता है—आकाश सर्वव्यापी है। उससे अधिक सूक्ष्म पदार्थ कोई नहीं। उसके बिना सूर्य का प्रकाश और ताप हमें नहीं मिल सकता। विद्युत् और चुम्बक की तरङ्गे भी आकाश

मे ही उठा करती है। प्रकाश का वाहन भी आकाश-तत्त्व ही है। यदि आकाश नही होता तो न हम रेडियो सुन सकते थे, न बेतार का कोई तार भेज सकते थे, न कुछ देख ही सकते थे।

सूर्य

आकाश के समस्त पिडों मे सूर्य सबसे अधिक तेजस्वी है। प्रकाश और गरमी की जितनी मात्रा हमे उससे मिलती है, उतनी किसी अन्य पिड से नहीं मिलती। उसी के कारण हमारा जीवन सम्भव है।

परन्तु विज्ञान और बातें भी बतलाता है। वह कहता है सूर्य हमारी पृथ्वी का पिता है। करोड़ों वर्ष हुए, सूर्य के जलते हुए वाष्प-पिड से एक छोटा-सा पिंड अलग हो गया। यह धीरे-धीरे ठंडा होता गया। वाष्प ने द्रव का रूप धारण कर लिया। फिर धीरे-धीरे इस छोटे-से द्रवीभूत पिंड पर ठोस पपड़ी जम गई। इसे हम धरातल कहते हैं। जब पृथ्वी का ताप कम होता हुआ विशेष मात्रा तक पहुँच गया तो जीवन प्रकट हुआ। जीवन का प्रकट होना आवश्यक बात थी अथवा केवल आकस्मिक घटना, इसके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते। परन्तु इस घटना के फलस्वरूप आज पृथ्वी पर अनेक प्रकार के उद्‌भिज और प्राणी हैं। पृथ्वी पर जितने प्रकार के प्राणी है, उनमे श्रेष्ठतर मनुष्य है जो विचार करने की शक्ति रखता है। इस तरह सूर्य हमारा भी जनक है।

विज्ञान बतलाता है कि इस पृथ्वी का सूर्य से केवल उत्पत्ति, प्रकाश और गरमी का ही सम्बन्ध नही है। वह एक अन्य दृढ बन्धन से भी

उससे बँधी है। सूर्य पृथ्वी को अपने चारों ओर गुण में बाँधकर घुमा रहा है और पृथ्वी बेचारी घूम रही है। इस गुण को वैज्ञानिक भाषा मे "मध्याकर्षण," "गुरुत्वाकर्षण" अथवा केवल "आकर्षण" कहते हैं। रस्सी यहाँ नहीं है, केवल खिचाव-मात्र है परन्तु फल वही होता है जो रस्सी के मौजूद रहने से होता।

सूर्य के सामने हमारी पृथ्वी वामन से अधिक बड़ी नहीं है—सच तो यह है कि वह वामन से भी कई गुनी छोटी निकलेगी। पृथ्वी का व्यास ७,९२० मील के लगभग है। सूर्य का व्यास ८,६४,००० मील है। इससे यह साफ हो जाता है कि सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से १०९ गुना बड़ा है। सूर्य इतना बड़ा है कि यदि हम चाहें तो उसके पिंड से हमारी पृथ्वी-जैसी बड़े १३ लाख पिंड निकल सकते है। इतने बड़े पिंड की कल्पना भी हम सरलता से नहीं कर सकते।

इतने बड़े पिड की तौल के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है? न्यूटन के आकर्षण-नियम के द्वारा हम सूर्य को तौल सकते हैं। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि सूर्य का घनत्व पृथ्वी के घनत्व की अपेक्षा लगभग चौथाई है। यदि उसका घनत्व इतना ही होता जितना पृथ्वी का तो सूर्य पृथ्वी से १३ लाख गुना भारी होता। परन्तु वास्तव में वह पृथ्वी से केवल ३ लाख गुना भारी है। इसका अर्थ यह हुआ कि तराजू के एक पलड़े में सूर्य होगा और दूसरे पलड़े में हमारी तीन लाख पृथ्वियाँ।

पृथ्वी समस्त वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है। यदि हम किसी भी वस्तु को हाथ मे छोड़ दें तो वह धरती पर गिर पड़ती है। यदि उस वस्तु को पृथ्वी का धरातल बीच में रोक नहीं लेता तो फिर वह पृथ्वी के केन्द्र में जाकर ठहरती। वस्तुओं के भार का कारण यही आकर्षण है। वस्तु

जितनी अधिक आकर्षण-शक्ति से पृथ्वी के केन्द्र की ओर खिंचती है, उतना ही अधिक उसका वज़न होता है। अपने महाकार के कारण सूर्य की आकर्षण-शक्ति पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से २८ गुनी है। हमारे यहाँ के सेर भर के बाट से सूर्य पर २८ सेर वस्तु तौली जा सकेगी। पाव भर तौल की पुस्तक सूर्य पर ७ सेर भारी होगी; दो-चार पुस्तकें भी साथ हों, तो मनुष्य पशु की तरह उन्हें ढोया करे। मान लीजिए, आपको कही ऐसा गुटका मिल गया जिसको मुँह मे रख लेने भर से आप पर ताप का कुछ भी प्रभाव नही पड़ता। उड़नखटोले पर बैठकर आप सूर्य पर पहुँच भी गये। परन्तु वहाँ जो होनहार घटेगी उसकी आपने कल्पना भी नहीं की होगी। यदि आपका धड़ १$\frac{1}{2}$ मन का है, तो वह वहाँ ४२ मन का हो जायगा। टाँगें तो इतना बोझ सँभाल नही सकती, अतः आप अपने ही बोझ से ढह जायँगे और हाड़-मांस के लोदे बनकर पड़े रहेंगे।

अब सूर्य के ताप की कथा सुनिए। वहाँ कितनी गरमी होगी, यह हम मनुष्यों के लिए कल्पनातीत है। सूर्य की भट्ठी में यदि हमारी पृथ्वी उठाकर झोंक दी जाय तो वह पल भर में भाप बनकर उड़ जायगी। इस गरमी का कोई ठिकाना है। सूर्य के धरातल का तापक्रम ६,०००° से कम नहीं होगा। केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के प्रो० एडिंगटन ने यह सिद्ध किया है कि सूर्य के केन्द्र का तापक्रम ४ करोड़ डिग्री है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जेम्स जीन्स ने अपनी एक पुस्तक में सूर्य की यात्रा का वर्णन किया है। कहना नहीं होगा कि उनकी यह यात्रा केवल कल्पना-मात्र है। वर्णन का जो भाग तापक्रम से सम्बन्ध रखता है, उसे हम यहाँ देंगे। वे लिखते हैं—

"अब लपटों की बड़ी-बड़ी महराबों और फुलझड़ियों ने हमें घेर

लिया। वे हमारे चारों ओर ही नहीं है । वरन् शिर पर भी है। हम सूर्य के जलते हुए वातावरण मे पहुँच गये है। हमारे चारो ओर सहस्रों बार चकाचौध उत्पन्न करनेवाला प्रकाश है। हम जैसे प्रकाश और ताप में डूब गये है। यहाँ न कोई ठोस पदार्थ है, न द्रव। यदि कुछ है तो वह केवल गैस (वाष्प) के रूप में होगा । जलती हुई भाप हमे घेरे हुए है।

हमे प्रतीक्षा है, कही किनारा लगे; हमारा यान किसी ठोस धरातल पर उतरे। परन्तु प्रतीक्षा व्यर्थ है। हम बराबर बढ़ते जा रहे हैं। अब हम लपटों के समुद्र के भीतर कई सौ मील बढ़ आये। ये कई हज़ार मील भीतर आगये । ठोस धरातल अब भी नही आया। शायद आगे चलकर मिले। अब हम लाखों मील भीतर बढ़ आये हैं परन्तु ठोस धरातल का फिर भी पता नही है। धीरे-धीरे बात हमारी समझ में आती है। हम सूर्य के अन्तःपुर मे पहुँच गये है, परन्तु वाष्प के सिवा वहाँ कुछ भी नही है, कुछ भी नही है! सूर्य का बाहरी वातावरण ही इतना गरम था कि ठोस अथवा द्रव के रूप में किसी वस्तु का रहना असम्भव था। यहाँ गरमी और भी अधिक है। जो है, वह वाष्प के रूप मे बदल गया है। पृथ्वी के वातावरण को भेदकर हमारा यान ठोस धरातल पर उतरता है; अन्य ग्रहों पर भी कहीं न कहीं ठोस धरातल आ ही जाता है, परन्तु यहाँ सब हवा-हवा है। हमारे यान की प्रगति में कोई भी वस्तु बाधक नहीं होती और हम सीधे सूर्य के केन्द्र की ओर खिचे हुए चले जा रहे है।

जब हम सूर्य के बाहरी वातावरण में पहुँचे थे और लपटों की लहरों और महराबों के भीतर चल रहे थे, तो हमने थर्मामीटर देखा था। वह ७-८ हज़ार डिग्री तापक्रम बता रहा था। कुछ भीतर आने पर तापक्रम

९-१० हज़ार पर पहुँचा। यहाँ जब हम अपनी अग्नि की चादर के बाहर झाँकते थे, तो हमें अपनी पृथ्वी दिखलाई दे जाती थी। कुछ अधिक आगे बढ़ने पर वह अदृश्य हो गई। चादर इतनी मोटी हो गई कि बाहर की चीज़ हम नही देख पाते। उसके बाद हम सूर्य की ओर खिंचे जा रहे थे और तापक्रम बड़ी शीघ्रता से बढ़ रहा था। वह करोड़ों डिग्री पर जा पहुँचा। अब हम ठीक सूर्य के केन्द्र मे हैं और अपने थर्मामीटर पर ४० करोड़ डिग्री तापक्रम पढ़ रहे हैं। जब हम पृथ्वी पर लौटकर पहुँचेंगे तो इतने तापक्रम की बात कैसे समझा सकेंगे। हमारे मन मे एक बात आती है—यदि हम अपनी जेब से एक अठन्नी निकालते और उसको इतना गरम करते कि उसका तापक्रम सूर्य के केन्द्र के तापक्रम के समान होता तो क्या होता ? जहाँ हम यह अठन्नी रख देते, उसके सहस्रों मील के घेरे मे एक भी प्राणी जीता न बचता।"

आप प्रश्न करेंगे, सूर्य मे इतनी गरमी कहाँ से आती है ? करोड़ों वर्ष से यह बराबर गरमी और प्रकाश दे रहा है, आखिर यह कब तक इसी तरह करता रहेगा ? क्या इसकी शक्ति कम हो रही है ? यदि हाँ, तो किस गति से ?

ये प्रश्न सचमुच अच्छे प्रश्न है। इस प्रकार के प्रश्न प्रत्येक विचार-शील मनुष्य के हृदय मे उठेंगे। विज्ञान ने इन प्रश्नों का उत्तर देने की चेष्टा की है और वह कुछ-कुछ सफल भी हुआ है। यहाँ पर हम पहले प्रकाश और गरमी के मूल कारण पर विचार करेंगे।

अनुमान किया जाता है कि यदि हमारा सूर्य पत्थर के कोयले का बना होता तो जितनी गरमी यह आज दे रहा है उतनी गरमी वह केवल डेढ़ हज़ार वर्ष तक उत्पन्न कर सकता। इसके पश्चात् सूर्य का चिह्न

भी नहीं रह जाता। इतनी गरमी उत्पन्न करने का कारण साधारण नही हो सकता। १८५४ मे जर्मन वैज्ञानिक हेल्म होल्ट्स ने यह सिद्ध किया कि सूर्य अवश्य सिमट रहा है और इस सिमटने के कारण ही उसका पदार्थ दबकर इतना गरम हो जाता है। उसका कहना था कि यदि सूर्य का व्यास २४० फ़ुट घटता जाय तो उससे इतनी गरमी मिलती रहेगी कि उसकी मूल गरमी मे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। उसका यह भी कहना था कि सूर्य के सिमटने का कारण आकर्षण है, वह अपने ही आकर्षण के कारण दबा जा रहा है। यदि सचमुच यह बात है तो इसकी सत्यता का पता कैसे लगे? गणित के द्वारा पता चलता है कि ग्रहों को जन्म देने के बाद यदि सूर्य बराबर सिकुड़ता गया होगा तो आज की परिस्थिति तक पहुँचने में उसे ढाई करोड़ वर्ष लगे होंगे। परन्तु स्वयं पृथ्वी की आयु ६ करोड़ से किसी भी प्रकार कम नहीं है। इतने समय में तो सूर्य को बहुत ही छोटा हो जाना चाहिए था। कुछ लोगों ने कहा—सूर्य पर लगातार भयंकर उल्कापात हो रहे है और घर्षण के कारण बराबर गरमी उत्पन्न हो रही है। यह सच है तो इतनी अधिक मात्रा मे गरमी उत्पन्न करने के लिए उल्काओं की मूसलधार वर्षा होनी चाहिए। क्या समस्त आकाश में इतनी उल्कायें है जो सहस्रों वर्षों मे भी शेष नहीं हो रही हैं जब सूर्य उनको इस संख्या में नष्ट कर रहा है? आधुनिक भौतिक विज्ञान-शास्त्रियों का कहना है कि उन्होंने मूल कारण का पता लगा लिया है। एक रासायनिक तत्त्व दूसरे तत्त्व में बदल जाता है। जब ऐसा होता है तो भयंकर गरमी निकलती है। रेडियम को हीलियम में बदला जाता है और एक रुपये भर रेडियम से इस प्रक्रिया में उतनी गरमी पैदा होती है जितनी ८४ मन कोयले के जलने से होती। हीलियम गैस का पता पहले-पहल

सूर्य में ही लगा था। सम्भव है, वहाँ रेडियम बड़ी मात्रा में उपस्थित हो जो टूटकर हीलियम बन रहा हो और साथ ही इतनी गरमी उत्पन्न कर रहा हो।

परन्तु इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्टाइन के इस सिद्धान्त ने तो क्रान्ति ही उत्पन्न कर दी, जिसके अनुसार पदार्थ और शक्ति वास्तव में एक ही वस्तु है। अब कुछ वैज्ञानिक यह विश्वास करने लगे है कि सम्भव है, सूर्य के भयंकर ताप और दबाव से पदार्थ का एकदम नाश हो जाता हो और वह शक्ति के रूप में बदल जाता हो, किसी अन्य पदार्थ के रूप में नहीं।

सूर्य की तरह बड़े, जलते हुए, पिंड की बनावट भी कुछ कम कौतूहल-जनक नहीं है। सूर्य के पिंड के भीतरी भाग के सम्बन्ध में कुछ भी जानना बहुत कठिन है। सूर्य का जो भाग हमें प्रतिदिन दिखलाई पड़ता है, वह गर्म और दबी हुई गैसों से बना हुआ है। यह भाग अन्य भागों की अपेक्षा अधिक घना है। इसी भाग पर "सूर्य-कलंक" दिखलाई पड़ते हैं। (इन "सूर्य-कलंकों" के सम्बन्ध में हम आगे कहेंगे) यह ठीक गोल पिंड जैसा लगता है। न इसमें पर्वत-जैसी कुछ उठी चीज़ दीखती है, न गड्ढे ही। परन्तु सूर्य हमसे इतना दूर है कि यदि वहाँ छोटे-मोटे पहाड़ या गड्ढे हों तो हमें पता भी नही लग सकता।

इस पिंड के ऊपर गैसों की एक मोटी तह है। इसकी उँचाई ५०० और १,००० मील के बीच में कहीं है। इस तह के सम्बन्ध में हम बहुत कुछ जानते है। इसमें बहुत-से ऐसे पदार्थ पाये जाते हों जो हमारी पृथ्वी पर भी मौजूद हैं। इस तह के बाहर गैसों की एक तह और है। यह तह दस-पाँच सहस्र मील गहरी है। जिस समय सर्वग्रहण होता है, उस समय इसकी ऊपरी सतह से लाल रंग की ज्वाला की

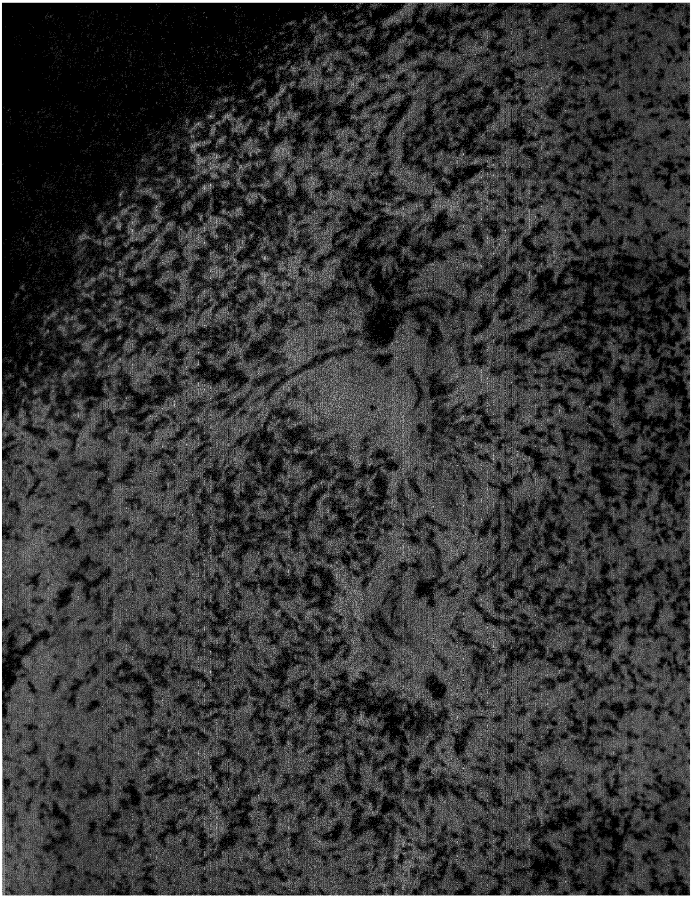

सूर्य का गड्ढेदार धरातल—पृष्ठ १८

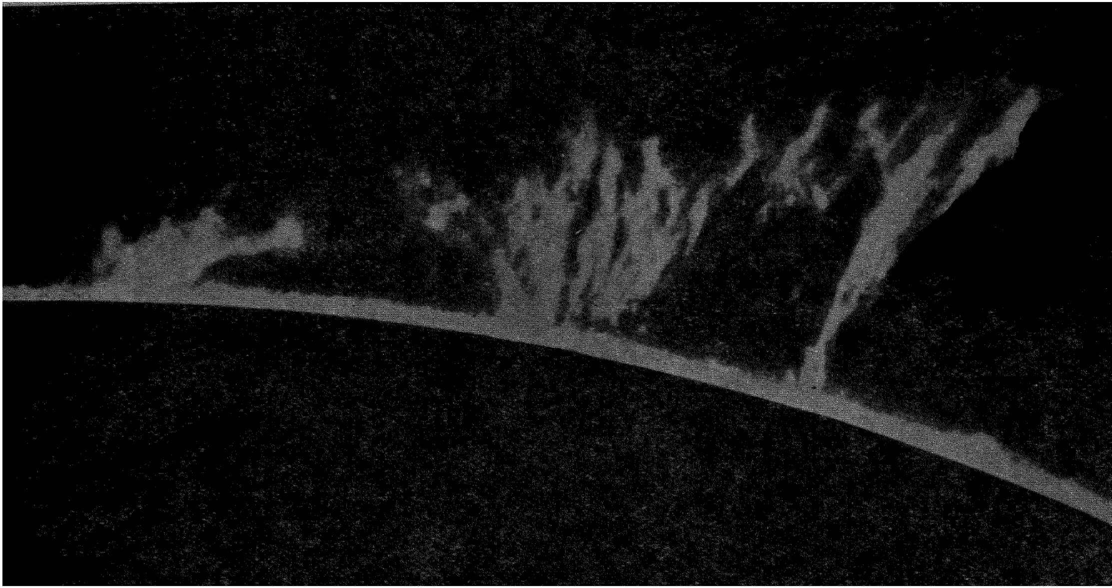

सूर्य की अग्निशिखायें—पृष्ठ १६

जीभें निकलती दिखलाई पड़ती हैं। इसके बाद "सूर्य का मुकुट" है। ग्रहण के समय यह बहुत सुन्दर लगता है और सचमुच सोने के मुकुट की तरह चमकता है। इसका आकार अनियमित है। यह सूर्य के ऊपरी सतह से बीस-पचीस लाख मील तक फैला हुआ है। इसे कॉरोना कहते हैं। कॉरोना धीरे-धीरे काले आकाश में विलीन हो जाता है। सर्व ग्रहण के समय भी कॉरोना और उससे नीचे की गैस की तह में इतना प्रकाश होता है जितना सप्तमी की चाँदनी में।

सूर्य से सदैव लम्बी-लम्बी लपटें उठा करती हैं। ये लपटें लाखों मील लम्बी होती हैं। पृथ्वी की किसी भी वस्तु से हम उनकी तुलना नहीं कर सकते। ये लपटें दो प्रकार की होती हैं। कुछ लपटें शान्त होती हैं। उनका आकार-प्रकार बहुत धीरे-धीरे बदलता है। इस कारण हम कुछ विशेष लपटों को बराबर पहचान सकते हैं। हमारी पृथ्वी की तरह सूर्य भी अपनी धुरी पर परिभ्रमण करता है। यह बात इन लपटों से सिद्ध हो जाती है। जब सूर्य घूम जाता है तो लपट दिख-लाई नहीं पड़ती। वह उसके पीछे जाकर छिप जाती है। परन्तु जब सूर्य आधा चक्कर लेकर फिर निकलता है तो यह लपट उसी रूप में देखी जा सकती है। ये लपटें सौरमंडल में एक ही स्थान पर तैरते हुए बादल के समान जान पड़ती हैं। दूसरे प्रकार की लपटें आकार-प्रकार बदलती रहती हैं, इसलिए उन्हें पहचानना कठिन ही नहीं, असम्भव है। ये पहली लपटों की अपेक्षा अधिक चमकीली होती हैं। ये अधिकतः सूर्य-कलंकों के आस-पास पाई जाती हैं। कभी-कभी तो ये लपटें पाँच मील ऊँची होती हैं।

सूर्य के कॉरोना के सम्बन्ध में हमें विशेष जानकारी नहीं है। वास्तव में अभी उसकी परीक्षा के लिए समय ही नहीं मिला। हम

पहले कह आये हैं कि यह केवल सर्वसूर्य-ग्रहण के समय ही दिखलाई पड़ता है। एक तो सर्वसूर्य-ग्रहण बहुत कम होते है, दूसरे उनमे भी ग्रहण का समय बहुत कम होता है। अब तक जितने भी ग्रहणों की परीक्षा की गई है यदि उन सबका समय जोड़ा जाय तो एक घंटे का समय निकलेगा। इस एक घंटे के समय में भी वायुमंडल, बदली, आँधी—अनेक बाधायें हैं। परन्तु फिर भी वैज्ञानिकों के पास कॉरोना के बहुत-से फोटों इकट्ठे हो गये है।

अब तक के अध्ययन का सार इस प्रकार है। कॉरोना और सूर्य-कलंकों में अवश्य किसी प्रकार का सम्बन्ध है। जब कलंकों की संख्या अधिक होती है, तो कॉरोना प्रायः गोल होता है; जब कम होती है तो सूर्य की मध्य-रेखा के पास कॉरोना की रश्मियाँ लम्बी और ध्रुवों के पास की रश्मियाँ छोटी होती है। परन्तु आखिर यह सम्बन्ध क्यों है, इस प्रकार कॉरोना का आकार क्यों बदलता है—ये बाते अभी भविष्य के गर्भ में छिपी हैं। दूसरी बात कॉरोना के सम्बन्ध में यह मालूम हुई है कि उसका घनत्व बहुत सूक्ष्म है। १८४३ का पुच्छलतारा कॉरोना में कम से कम ३,००,००० मील तक घुसा चला गया, परन्तु जब वह बाहर निकला तो उसके पदार्थ में किसी प्रकार की हानि नहीं हुई थी। गणना से पता चलता है कि उसकी गति भी वही रही, कॉरोना के पदार्थ ने उसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं की। स्वीडन के एक वैज्ञानिक का कथन है कि कॉरोना के ढाई वर्गगज स्थान में केवल एक अत्यन्त सूक्ष्म कण होगा।

परन्तु कॉरोना अब भी आकाश का रहस्य बना है। यह समझ में नहीं आता कि उसमें प्रकाश कहाँ से आता है। जो भाग सूर्य के निकट हैं, उनके सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि वे सूर्य के प्रकाश से चमकते

हैं, परन्तु उसके बाहर के भागों में अवश्य ही सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता; फिर वे चमकते क्यों हैं ? दूसरा प्रश्न यह है कि कॉरोना के कण परस्पर मिलकर पिड क्यों नही बना लेते ? इतने कम घनत्व का पिंड ठंडा क्यों नही हो जाता ?

सूर्य के सम्बन्ध में सबसे आश्चर्यजनक आविष्कार उसके कलंकों का है। चन्द्रमा के कलंक सबको दिखलाई पडते है और वह बेचारा उनके लिए बुरी तरह बदनाम है, परन्तु पिता सूर्य के कलंक की बात इनकी महत्ता से इतनी ढकी है कि उसे कोई नहीं जानता।

यहाँ हम "कलंक" शब्द की थोड़ी व्याख्या कर दे। चन्द्रमा के काले दाग़ों को हम 'कलंक' कहते है। सूर्य पर भी इस तरह के दाग़ पाये गये है परन्तु वे काले नही हैं। वास्तव में वे आस-पास के रंग से कहीं ज्यादा चमकीले है। फ़ोटोग्राफ़ में ये काले 'चावल के दाने' जैसे दिखलाई पड़ते हैं। कुछ दाने गोल होते है, कुछ दीर्घवृत्ताकार। कभी-कभी कुछ कई दाने पास आ जाते है और एक-दूसरे में घुल-मिलकर बड़े बन जाते हैं। एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं, कुछ हलके-हलके चलते हैं; कुछ इतने तेज़ चलते है जैसे आँधी में उड़ रहे हों। ये दाने अब दिखलाई पड़े, अब अदृश्य हो गये। इससे यह अनुमान किया जाता है कि इनका जीवनकाल अत्यन्त कम है। चन्द्र-कलंक स्थायी है। सूर्य-कलंक बनते-मिटते रहते हैं। इनके आकार में भी बड़ा अन्तर होता है। कुछ कलंक तो इतने बड़े हैं कि उनमें हमारी दस-बारह पृथ्वियाँ समा जायँगी। ये कलंक पूर्व से पश्चिम की ओर चलते हुए दिखलाई पड़ते है। यदि हम प्रतिदिन कुछ बड़े कलंकों को ध्यान से देखते रहें तो यह अवश्य स्पष्ट हो जायगा कि सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता है। वास्तव में सूर्य २७$\frac{१}{४}$ दिन में अपने अक्ष पर घूम जाता है।

फ़ोटोग्राफ़ मे सूर्य के कलंक बीच में छप्पर के उधड़े छेद-जैसे मालूम होते हैं। परन्तु दूरदर्शक मे देखने पर इनका वास्तविक रूप खुलता है। कलंक के चारों ओर सूर्य की सतह इस तरह लगती है जैसे ढेर का ढेर पिघला हुआ सोना रक्खा है। कभी यह पिघला हुआ तत्त्व कलंक के गड्ढे मे बहता हुआ जान पड़ता है। कभी-कभी ढेर एक तरफ़ से बढ़ने लगता है। वह कलंक के ऊपर पुल की तरह छा जाता है। ये पुल ५,००० मील से भी अधिक लम्बे होते हैं। धीरे-धीरे पुल सारे कलंक को ढाँप देता है। इस प्रकार कलंक का अस्तित्व ही मिट जाता है। कलंक कभी-कभी कई सप्ताह, कभी-कभी कई महीनों बने रहते हैं। फिर इन पर पुल बँध जाता है और ये नष्ट हो जाते हैं। सूर्य का एक कलंक १८ महीने तक दिखलाई पड़ता रहा। फिर वह धीरे-धीरे लोप हो गया।

इन कलंकों की भग-दौड़ देखने योग्य है। कभी-कभी दो कलंक पास-पास होते हैं। ये एक साथ बनते दिखलाई पड़ते हैं। फिर ये बड़ी शीघ्रता से बढ़ते जाते हैं और साथ ही एक-दूसरे से हटते जाते हैं। इनके बीच में छोटे-छोटे कलंक बन जाते हैं परन्तु वे शीघ्र समाप्त हो जाते हैं। कभी-कभी इन भागते हुए कलंकों की गति ८,००० मील प्रति-दिन देखी गई है। इन कलंकों के सम्बन्ध में एक आश्चर्यजनक बात यह मालूम हुई है कि इनकी संख्या नियमानुसार ग्यारह वर्ष के चक्र में घटा-बढ़ा करती है। साढ़े छः वर्ष कलंकों की संख्या कम रहती है, इसके बाद साढ़े चार वर्ष बढ़ जाती है। इस तरह यह घटने-बढ़ने का चक्र, न जाने क्यों, निरन्तर चलता रहता है। परन्तु यह संख्या औसत बतलाती है। वास्तव में सात से लेकर सत्रह वर्ष तक के चक्र पाये जाते हैं। इन कलंकों में एक विचित्र बात और भी पाई जाती है।

ये सूर्य के पिंड की मध्यवर्ती रेखा को केन्द्र बनाकर चलते-फिरते जान पड़ते हैं। ये सूर्य के बहुत उत्तर या दक्षिण भाग में नहीं पाये जाते ।

इन कलंको का हमारी पृथ्वी और उसके निवासियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस विषय में वैज्ञानिकों मे बड़ा मतभेद है। साधारणतः दुर्भिक्ष, फ़सल की उपज, बाज़ार की मंदी-महँगी, जल-वर्षा, युद्ध, महामारी और इस प्रकार की अनेक दुर्घटनाओं का सम्बन्ध सूर्य के कलंकों से जोड़ दिया जाता है । जहाँ सूर्य पर कोई धब्बा दिखलाई दिया कि समाचारपत्रों ने दुर्घटनाओं के लिए भविष्यवाणी करनी शुरू कर दी। यदि कहीं सचमुच कोई दुर्घटना हो गई तो, फिर क्या कहना! लोग चिल्लाने लगते हैं—"बस, पकड़ लिया। इस सबका कारण वही बदमाश सूर्य का अमांगलिक कलंक है।" आश्चर्य तो यह है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक जन-साधारण की इस चिल्ल-पों में मिल जाते हैं । रूस के एक विज्ञान के प्रोफ़ेसर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि पृथ्वी पर अपराधों के बढ़ने का कारण भी ये ही सूर्य के कलंक हैं। वे लिखते हैं—"जब ये कलंक अधिक दिखाई देते हैं, तब अवश्य कुकर्म बढ़ जाते हैं। जो ऋणाणु उस समय सूर्य से पृथ्वी पर आते हैं वे मनुष्य के मस्तिष्क के इच्छा और मनोवृत्ति-सम्बन्धी केन्द्रों में विकार उत्पन्न कर देते हैं। सचमुच एक प्रकार से मनुष्य अपने कार्यों के लिए कुछ भी उत्तरदायी नहीं।" यह तो बहुत सुन्दर बात हुई। कलंक तो थोड़े-बहुत हमेशा रहते ही हैं। अतः, कर्म करने के बाद कोई भी अपराधी कह सकता है—"भाई, मुझे दंड क्यों देते हो। मेरा इसमें क्या हाथ? इन सूर्य के कलंकों के कारण मैं एकदम अस्थिर चित्त हो गया। इन्हें ही फाँसी दो न!"

परन्तु चाहे मनुष्य के मस्तिष्क पर सूर्य के कलंकों का कोई प्रभाव

पड़े या न पड़े, पृथ्वी की दो वस्तुओं पर इन कलंको का प्रभाव पड़ता दीखता है।

जब सूर्य पर कलंको की संख्या अधिक दिखलाई पड़ती है उस समय ध्रुवदर्शक यंत्र की सुई की दिशा अनियमित रूप से बदलने लगती है। साधारणतः सुई बहुत कुछ उत्तर-दक्षिण रहती है। परन्तु यदि उस समय सूर्य पर कलंक अधिक संख्या में उग आये तो फिर इस निर्देशक यंत्र की सुई किसी निश्चित दिशा मे ठहर ही नहीं सकेगी और नाविक को दिशा-भ्रम हो जायगा। इस यंत्र की सुई के गुण में अन्तर उसी समय पडा करता है जब उसके पास कोई चुम्बक रख दिया जाय। तब वह उत्तर-पश्चिम की दिशा छोड़ देती है। अतः, वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इसी तरह की परिस्थिति कलंको के अधिक संख्या में उत्पन्न होने से प्रकट होती जान पड़ती है। वे कहते हैं—इस समय "चुम्बकीय आँधी चल रही है।"

दूसरा प्रभाव "उत्तरी प्रकाश" पर पड़ता है। उत्तर और दक्षिण ध्रुवों के पास रात के समय एक विशेष प्रकार का प्रकाश दिखलाई पड़ा करता है जो क्षण-क्षण में सैकड़ों प्रकार के रूप-रंग बदला करता है। जब कभी चुम्बकीय आँधी उठती है तो यह प्रकाश बहुत ही अधिक उज्ज्वल हो जाता है और इसकी परिधि भी बढ़ जाती है। उस समय आकाश में बिजली बहती हुई जान पड़ती है और एक स्थान से दूसरे स्थान को तार भेजना कठिन हो जाता है।

१– सूर्य-ग्रहण

सर नार्मन लॉकमेर ने एक स्थान पर सूर्य-ग्रहण का वर्णन करते हुए लिखा है—

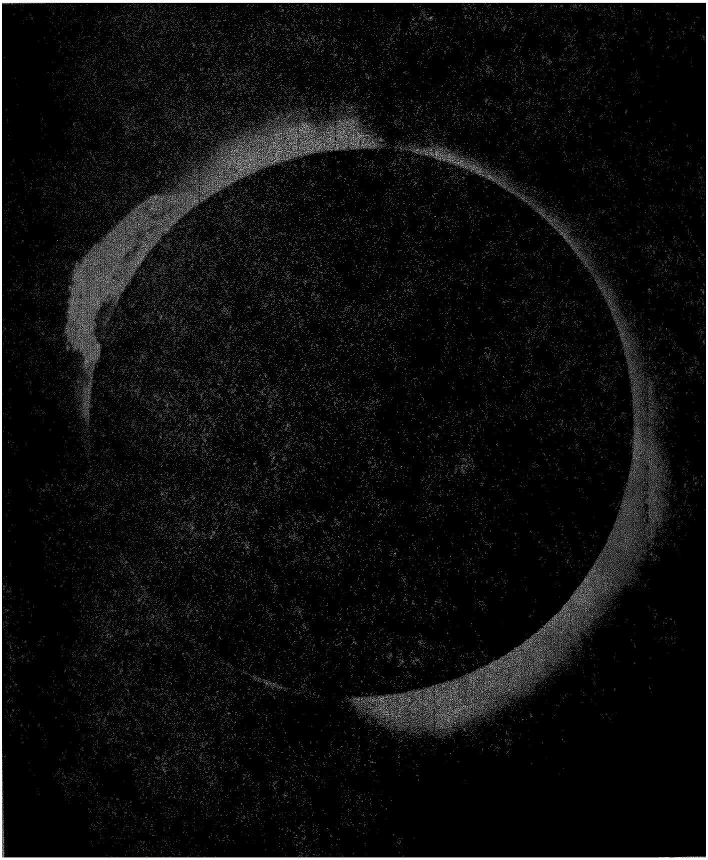

२६ मई १६१६ के दिन पड़नेवाले पूर्ण सूर्यग्रहण में सूर्य का मुकुट—पृष्ठ २५

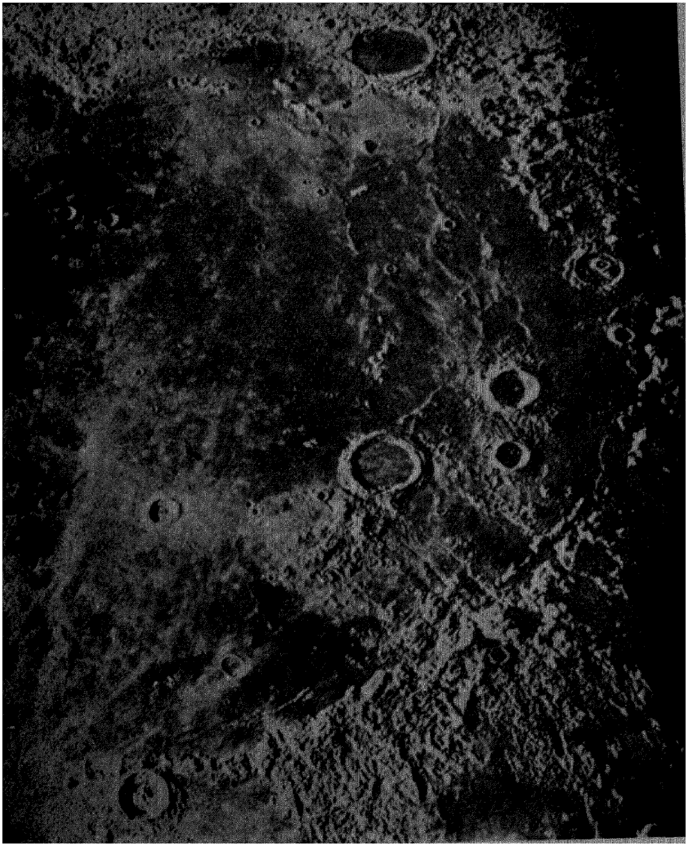

चन्द्रमा के धरातल के गढ़े—पृष्ठ ४१

"सूर्य-ग्रहण के समय प्रकृति मे एक नया सौंदर्य गोचर होने लगता है। जान पड़ता है कि हम किसी नये ही लोक में आगये। यह लोक भयानक दृश्यों और रोमांचक वातावरण से भरा हुआ लगता है। उसमें नीरवता और विषाद का शासन है। मनुष्य मौन हो जाते है। पशु-पक्षी बोलना बन्द कर देते हैं। बादल ऐसे लगते है जैसे हमारा उनसे कभी परिचय हुआ ही नही हो; उन्हे देखकर हृदय अज्ञात आशका से आकुल हो जाता है। समुद्र शान्त, रक्तवर्ण हो जाता है।"

इसी प्रकार एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने सर्वग्रहण के सम्बन्ध मे लिखा है—

"जब सूर्य का एक पतला धागा रह गया और इससे पृथ्वी पर मंद प्रकाश आने लगा तो सब वस्तुओं मे एक तरह की खलबली मच गई। प्रत्येक प्राणी के मन मे न जाने क्यों यह इच्छा उठी कि वह अपने पड़ोसी से बात करे। इस समय लोगों के परस्पर बात करने से ऐसा कलरव उठा जैसे वह जनसमुदाय नही हो, वरन् आँधी के बाद का समुद्र हो। ज्यों-ज्यों ग्रहण बढता गया, यह कलरव अधिक ऊँचा होता गया। अन्त में सूर्य अदृश्य हो गया। इस समय पूरा सन्नाटा था। आकाश का दृश्य इतना सुन्दर था कि लोग उसे देखने लगे, बात कौन करता? चिड़ियों का गाना बन्द हो गया। आकाश में पूर्ण निस्तब्धता थी।"

जब सभ्यता का विकास अधिक नहीं हुआ था और मनुष्य ग्रहणों के कारण को नहीं जानता था, न उनके विषय में कोई भविष्यवाणी कर सकता था, तब उसके हृदय में उनके प्रति बड़ा भय था। सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण होते तो उसका मन भय और आशंका से भर जाता। कुछ लोग सोचते थे, दुर्भिक्ष पड़ेगा, महामारी होगी, युद्ध होगा

अथवा सम्भव है, प्रलय हो जाय । इसी लिए प्राचीन पुस्तकों में अनेक ग्रहणों के वर्णन मिलते है।

ग्रहण का सबसे प्राचीन उल्लेख चीन देश के ग्रन्थों में है। यह ग्रहण २२ अक्टूबर २१३७ ई० पू० को लगा था। प्रसिद्ध ग्रन्थ शू-चिग में महाराज चुंगक्यांग के सम्बन्ध में इसका उल्लेख आया है। कथा इस प्रकार है। ग्रहणों के विषय में भविष्यवाणी करने का काम दो राज-ज्योतिषियों—"ही" और "हो"—को सौंपा गया था। परन्तु गणित का अध्ययन करते रहने के बदले वे शराब पीकर मस्त रहने लगे। इस वर्ष ग्रहण के विषय में कोई भविष्यवाणी उन्होंने नहीं की। अतः जब अकस्मात् ग्रहण लगा तो जनता को बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा। भारतीयों की तरह चीन देश के निवासी भी ग्रहण के समय अनेक धर्मकृत्य करते हैं। वे न हो सके। इस प्रकार धर्म की बड़ी हानि हुई। शू-चिग में लिखा है कि रुष्ट होकर महाराज ने दोनों ज्योतिषियों का सिर धड़ से अलग करवा दिया।

बैबिलोनिया देश में ७४७ ई० पू० से ग्रहणों का हिसाब रक्खा जाना शुरू हुआ। इन ग्रहणों के अध्ययन से न केवल ज्योतिष-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक शोधों में सहायता मिली है, वरन् इतिहास की प्रसिद्ध घटनाओं की तिथियों की जाँच में भी इनसे सहायता मिली है।

प्राचीन सूर्य-ग्रहणों में सबसे प्रसिद्ध २८ मई ५८५ ई० पू० को लगा था। यूनान के लेखक हेरोडोटस् ने उसका वर्णन किया है। वास्तव में दो प्राचीन जातियों का इतिहास इस ग्रह से सम्बन्धित है। यह ग्रहण एक युद्ध के बीच में पड़ गया था। यह युद्ध मीड-जाति और लिडिया-निवासियों के बीच में हो रहा था। जब युद्ध घमासान पर पहुँच गया तब ग्रहण पड़ने लगा। इस पर दोनों ओर की सेनाओं ने समझा कि

उनके युद्ध से देवता अप्रसन्न है। युद्ध रोक दिया गया और उसी समय संधि कर ली गई। इसी प्रकार की, परन्तु फल मे इसके विपरीत, एक घटना का वर्णन प्लुटार्क ने "पेरिकिल्स की जीवनी" में लिखा है। पेरिकिल्स अपनी नाविकसेना के साथ युद्ध के लिए बढ़ने ही वाला था कि सूर्य-ग्रहण लगा। मल्लाह लोग आश्चर्य और द्विविधा में पड़ गये। परन्तु पेरिकिल्स असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसने कहा—"यह तो कोई अपशकुन नहीं है। जिस तरह इस चादर से मैं अपना मुख ढक सकता हूँ उसी तरह कोई बड़ी वस्तु सूर्य को ढक सकती है।" इस पर नाविक शान्त होकर अपने काम में लग गये।

सूर्य-ग्रहण क्यों पड़ता है? इस विषय मे सर्वसाधारण कुछ भी नहीं जानते। हमारे यहाँ तो राहु की कहानी प्रसिद्ध है। राहु सूर्य को खाने दौड़ता है, कभी उसका एक अंश निगल जाता है, तब उस अंश का ग्रहण पड़ जाता है। कभी राहु सारे सूर्य को निगल जाता है तब सर्व-ग्रहण पड़ता है। ग्रहण के समय अपने प्रिय देवता सूर्य को राहु-द्वारा कष्ट मिलते देखकर लोग ईश्वर का स्मरण करने लगते हैं। कष्ट-निवारण के लिए धर्मार्थ दान दिया करते है। जब उग्रह हो जाता है और सूर्य निकलने लगता है तो स्नान करते हैं। साधारणतः ग्रहण के बाद बड़ा पर्व लगता है।

परन्तु विज्ञान के अध्ययन से यह पता चलता है कि ग्रहण का कारण यह है कि सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी के पिंड घूमते-घूमते एक ही रेखा में आ जाते हैं। सूर्य से ९,३०,००,००० मील की दूरी पर पृथ्वी उसकी परिक्रमा कर रही है और पृथ्वी से २,४०,००० मील दूर चाँद उसकी परिक्रमा कर रहा है। घूमते-घूमते इस प्रकार की परिस्थिति आ जाना असम्भव नहीं है जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाये या

पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच मे आ जाये। दोनों परिस्थितियों में सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा अथवा पृथ्वी से अवरुद्ध हो जाता है। पहली दशा में पृथ्वी पर से सूर्य के दर्शन नहीं होते, सूर्य-ग्रहण लग जाता है; दूसरी दशा मे चन्द्रमा पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता और हम पृथ्वी से उसे देख नही सकते; अतः, चन्द्र-ग्रहण लग जाता है।

सूर्य और चन्द्रमा केवल अमावस्या के दिन ही एक दिशा में रहते हैं। इसी लिए सूर्य-ग्रहण हमेशा अमावस्या के दिन पड़ता है। पूर्णिमा के दिन सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी की विपरीत दिशाओं मे होते है। ऐसी परिस्थिति मे पृथ्वी सूर्य के प्रकाश को चन्द्रमा पर पड़ने नही देती। फल यह होता है, कि चन्द्रमा में चमक नही रह जाती। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि चन्द्रमा अपने प्रकाश से नही चमकता। जब उस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तभी वह इस रूप में हमें दिखलाई देता है। पृथ्वी के बीच में आने पर ये किरणें चन्द्रमा के धरातल पर नही पड़ सकती। वह अंधकारपूर्ण बना रहता है। इस प्रकार चन्द्रग्रहण सदा पूर्णिमा के दिन लगा करते हैं। ऐसी परिस्थिति किसी दूसरे दिन उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

परन्तु यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है—"ठीक; परन्तु फिर प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण क्यों नही पड़ता और प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्रमा में ग्रहण क्यों नही लगता ?"

हाँ, बात ठीक है। यदि सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की कक्षायें एक ही समतल में होतीं, अर्थात् यदि ये तीनों एक ही समतल पर परिक्रमा कर रहे होते तो अवश्य ही ऐसा होता। प्रत्येक अमावस्या के दिन सूर्य-ग्रहण लग जाता और प्रत्येक पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण। परन्तु बात ऐसी नहीं है। चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी की कक्षा से ५° झुकी हुई है।

इस प्रकार चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी की कक्षा को दो स्थानों पर काटती है। यदि इन स्थानों पर चन्द्रमा हो और पृथ्वी उसके बिलकुल सामने पड़े, उसी समय कोई ग्रहण सम्भव है। परन्तु यह बात सुगमता-पूर्वक नही हो पाती। पृथ्वी स्वयं सूर्य के चारो ओर घूमती है और जब चन्द्रमा उसकी कक्षा को काटता है तो वह सदा ही सामने नही पड़ती। चन्द्रमा अपनी कक्षा पर लगभग २७ दिन २ घंटे मे चक्कर लगा लेता है। परन्तु पृथ्वी की अपनी परिक्रमा के कारण दो अमावस्याओं में २९½ दिन का अन्तर रहता है। इसका फल यह होता है कि चन्द्रमा पृथ्वी की कक्षा को एक ही स्थान पर नही काटता। अमावस्या और पूर्णिमा को कभी वह एक स्थान पर होता है, कभी उससे हटा हुआ। ग्रहण उसी समय पड़ सकते है जब चन्द्रमा लगभग उन बिन्दुओं के पास हो जहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा की कक्षायें परस्पर कटती है।

सर्वग्रहण का दृश्य रमणीय दृश्यो मे सबसे अधिक चित्ताकर्षक है। मनुष्य के हृदय पर यह दृश्य एक अद्भुत प्रभाव डालता है। दस मिनट पहले अँधेरा होने लगता है। सूर्य के प्रकाश का रंग बदल जाता है और आकाश और पृथ्वी दोनों उस रंग मे रँगकर विचित्र-से हो जाते हैं। तापक्रम इतना घट जाता है कि ठंडक लगने लगती है। जैसे-जैसे सूर्य का प्रकाश क्षीण होता जाता है, वैसे-वैसे फूल अपनी पंखुरियाँ बन्द करने लगते हैं, मानो रात हो गई हो। पशु-पक्षी भी सर्वग्रहण के प्रभाव से अछूते नहीं रहते। चिमगादड़े अपने घोंसलों से निकलकर पंख फड़फड़ाती हुई इधर-उधर उड़ने लगती है। अन्य पक्षी, जहाँ थे, वहीं दुबक-कर सहमे-से बैठे रहते है। कुछ गिरते-पड़ते अपने घोंसलों की ओर दौड़ते हैं। पालतू पशु भयभीत होकर रस्सी तुड़ाने लगते हैं। मवेशी पंक्तिबद्ध हो जाते है; वे अपनी सीग आकाश में उठाकर एक घेरे में खड़े

हो जाते हैं जैसे उन्हें किसी हिंसक पशु के आक्रमण की आशंका है। मनुष्य भी इस प्रभाव से बच नही सकता। एक विचित्र प्रकार की अशान्ति उसके हृदय मे खलबली मचाये रहती है।

चन्द्रमा की छाया धीरे-धीरे सूर्य को ढकती चली जाती है। सर्वग्रास से क्षण भर पहले ऐसा लगता है कि सूर्य पर आँधी उठ रही हो। चन्द्रमा की छाया बड़े डरावने वेग से सूर्य को निगलने दौड़ती है। जब सूर्य की एक पतली-सी धनुषाकार धारी रह जाती है तो सारा वातावरण क्षुब्ध और भयोत्पादक हो जाता है। परन्तु यह क्षीण रेखा एक-दम मिट नहीं जाती। ऐसा लगता है जैसे यह क्षीण रेखा टूटकर बहुत-सी मणियों में बँट गई हो।

ये मनके कैसे? चन्द्रमा के सम्बन्ध में लिखते हुए हमने बताया है कि उस पर बड़े-बड़े पहाड़ है। जब चन्द्रमा सूर्य के किनारे को ढकने के लिए बढ़ता है तो स्वयं उसका रहस्य खुल जाता है। पहाड़-पहाड़ियों की वजह से उसका किनारा गोल नहीं रहता। वह टूटा-फूटा दिखलाई देता है जैसे उसमें दाँत निकल आये हों। इस प्रकार क्षण भर चन्द्रमा का किनारा सूर्य के किनारे को पूरा-पूरा ढक नहीं पाता। दाँतों के बीच में से प्रकाश छनने लगता है। इसी से सूर्य की क्षीण कला टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और मनकों के रूप में हमें दिखलाई पड़ती है। इस समय लगभग सारा सूर्य ढका होता है और अंधकार का साम्राज्य अनंत दिगंत तक फैल जाता है। इसलिए सूर्य की क्षीण कला के ये टुकड़े, स्वयं अत्यन्त प्रकाशमय होने के कारण, अपने असल आकार से बड़े और गोलाकार दिखलाई देते हैं।

सहसा चन्द्रमा की छाया काँपने लगती और एकाएक अँधेरा हो जाता है। सर्वग्रहण हो गया। दो-चार सेकेंड तक अन्धकार इतना अधिक जान

पड़ता है कि हृदय भय से काँप जाता है; कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता; न आकाश सूझता है, न पृथ्वी। जैसे रात हो गई हो। चमकीले नक्षत्र दिखलाई पड़ने लगते हैं। जब आँखे कुछ स्वस्थ होती हैं, जो आकाश में चन्द्रमा दिखलाई देता है, वह बिलकुल काला है। परन्तु लाल रंग का एक घेरा उसके चारों ओर है। यह वास्तव में सूर्य का प्रकाशमंडल है। चन्द्रमा इतना बड़ा नही है कि इतने दूर होने पर भी सूर्य और उसके प्रकाशमंडल को पूरा-पूरा ढक सके। इस प्रकाशमंडल से अग्नि की चमकीली जिह्वायें निकलती दिखलाई पड़ती है। लाल प्रकाशमंडल के बाहर, चाँदी की तरह चमकता हुआ एक मंडल है। इसे "सूर्य का मुकुट" या कॉरोना कहते है। इसके सम्बन्ध में हम पहले लिख आये है।

इस समय के प्राकृतिक वैभव का वर्णन करना सचमुच कठिन है। चन्द्रमंडल स्याही से भी काला रहता है। इसके चारों ओर मोती-से भी उज्ज्वल प्रकाश का मुकुट है। काले चन्द्रमंडल के पीछे से रक्त-ज्वालायें लपकती हुई साफ़ दिखलाई पड़ती है। ये ज्वालायें चन्द्रमंडल के घेरे से सटे हुए लाल रंग के वर्णमंडल से निकलती है। विवर्ण चन्द्रमंडल की तुलना में इस वर्णमंडल का तेज और भी निखर उठता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे लाल अँगूठी में धुंधला काला नग जड़ा हो।

इसके बाद सूर्य निकलने लगता है। इसे "उग्रह" कहते हैं। पहले सूर्य के नीचे का वायुमंडल सफ़ेद इसपात के रंग का हो जाता है। तब एकाएक इतना प्रकाश हो जाता है कि आँखें चौंधिया जाती हैं। प्रकाश-मंडल विकल आया है। उसकी एक कोर सामने आगई है। धीरे-धीरे सारा सूर्य निकल आता है। सूर्य का जो भाग पहले निकलता है वह अपने आकार की अपेक्षा बहुत बड़ा लगता है। उस समय सूर्य हीरे

की अँगूठी के समान दिखलाई पड़ता है। "सूर्य का मुकुट" केवल एक-आध मिनट तक दिखलाई पड़ता है। इसके बाद वह छिप जाता है।

ज्योतिषियों के लिए सर्वसूर्यग्रहण बहुत महत्त्वपूर्ण है। साधारणतः कारोना इसी समय दिखलाई पड़ता है और उसका अध्ययन इसी समय किया जा सकता है। इसी समय चन्द्रमा की छाया सूर्य पर पड़ती है और उसकी गति के सम्बन्ध मे जो गणनाये की गई हैं उनकी सत्यता की परीक्षा की जा सकती है। सूर्य की लपटों और उसके प्रकाशमंडल के वर्ण-चित्र लेना भी इसी समय सम्भव होता है। ये वर्ण-चित्र इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इनके द्वारा हमें यह पता चलता है कि सूर्य पर कौन-कौन तत्त्व हैं। इन्हीं कारणों से यह अवसर ज्योतिषियों के लिए किसी बड़े त्यौहार से कम नहीं होता और इस त्यौहार को कैसे मनाये--इसी सोच में उन्हें महीनों लग जाते है। वास्तव में सर्वसूर्यग्रहण के त्यौहार मनाने की तैयारी वर्षों पहले होने लगती है। पृथ्वी के किस भाग से सर्वग्रहण अच्छी तरह दिखाई देगा? कहाँ का वायुमंडल उस समय अत्यन्त स्वच्छ होगा? कौन यंत्र काम आयेंगे? ज्योतिष के अनेक सिद्धान्तों की जाँच इसी समय होती है। लाखो रुपये खर्च करके ज्योतिषी उपयुक्त स्थान पर पहुँचता है और सर्वग्रहण के समय फ़ोटो लेने में इतना व्यस्त होता है कि प्रकृति के सौंदर्य का निरीक्षण करने के लिए बेचारे को समय ही नहीं मिलता। उस पर भी बहुधा ठीक समय पर सूर्य पर बदली आ जाने अथवा वायुमंडल की गड़बड़ी के कारण उसे बहुत बार असफलता का सामना करना पड़ता है।

सर्वसूर्यग्रहण सदैव किसी एक स्थान से नहीं दिखलाई पड़ता। यदि गणित-द्वारा हिसाब लगाया जाये तो यह पता लगेगा कि पृथ्वी के

प्रत्येक स्थान से ३६० वर्षो मे एक ही बार सर्वसूर्यग्रहण देखा जा सकेगा। बहुधा सर्वग्रहणवाला मार्ग अटलांटिक अथवा प्रशांत महासागर में पड़ता है। कभी-कभी सर्वग्रहण केवल कुछ दूर के द्वीपों से ही दिखलाई पड़ सकेगा अथवा ऐसे स्थानों पर जो मनुष्य के लिए सुगम नही हैं। वस्तुत: आकाश के आश्चर्यों का अध्ययन करने के लिए ज्योतिषियों को बड़ा तप करना पड़ता है।

यह बात प्राचीन ज्योतिषियो ने ही खोज ली थी कि प्रत्येक १८ वर्ष ११ दिन बाद एक-जैसे ग्रहण पड़ते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि ग्रहण-चक्र की अवधि १८ वर्ष ११ दिन है। प्रत्येक ग्रहण-चक्र में बहुधा ७१ ग्रहण पड़ा करते हैं।

२—चन्द्रग्रहण

सूर्यग्रहण के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए हमने चन्द्रग्रहण के कारण के सम्बन्ध मे पीछे लिख दिया है। प्रत्येक वर्ष २-३ चन्द्रग्रहण पड़ा करते हैं।

पूर्णिमा के दिन पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है। अपनी कक्षाओं के झुकाव के कारण सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी सदैव समान रेखा में नहीं आते; परन्तु जब ऐसा हो जाता है तो चन्द्रग्रहण पड़ जाता है—पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और वह सम्पूर्ण अथवा कुछ अंश में हमारी दृष्टि से छिप जाता है।

पृथ्वी की छाया सूच्याकार होती है। यह छाया लगभग ८,५९,००० मील लम्बी होती है। जिस स्थान पर सूर्य चक्कर लगाता है, वहाँ इस छाया का व्यास ५,७०० मील है। साधारणत: प्रत्येक पूर्णिमा के दिन, कक्षा तिरछी रहने के कारण, चन्द्रमा इस छाया के नीचे-ऊपर होकर

निकल जाता है और ग्रहण नही पड़ता परन्तु जब वह इस छाया में पड़ जाता है तो ग्रहण लग जाता है। यदि चन्द्रमा इस छाया में सम्पूर्ण रूप से डूब गया तो सर्वग्रहण पड़ता है, यदि उसका केवल एक अंश डूबा तो आंशिक ग्रहण।

चन्द्रग्रहण का दृश्य भी बहुत रोचक होता है। जब चन्द्रग्रहण पड़ने लगता है तो पहले उसके पूर्वी किनारे का कुछ भाग धुँधला हो जाता है और फिर क्रमशः अदृश्य। जैसे-जैसे चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में अधिक-अधिक आता जाता है, वैसे-वैसे चन्द्रमा के अधिक भाग का लोप होता जाता है। जब सर्वग्रहण हो जाता है तो चन्द्रमा मटमैले लाल रंग का दिखलाई पड़ने लगता है। इस लाल रंग का वही कारण है जो गोधूलि के लाल होने का। हमारा वायुमंडल हरे और नीले रंग की किरणों को सोख लेता है; वह केवल लाल किरणो को प्रतिदीप्त करता है। ये किरणे पृथ्वी के किनारों पर मुड़-कर चन्द्रमा को छू लेती है यद्यपि वह इस समय पृथ्वी की छाया में रहता है। जैसे-जैसे ग्रहण का समय समाप्त होता जाता है, चन्द्रमा पृथ्वी की छाया मे से बाहर निकलता जाता है और 'उग्रह' होने लगता है। सर्वग्रहण का समय २ घंटे से अधिक नहीं होता और चन्द्रग्रहण में, प्रारम्भ से अन्त तक लगभग ४ घंटे लगते है।

सूर्यग्रहण की तरह चन्द्रग्रहण ज्योतिषी के लिए महत्त्वपूर्ण नही है, अतः वह उसमें कोई दिलचस्पी नही लेता परन्तु भारत की धर्मप्राण जनता चन्द्रमा को राहु से ग्रसा जानकर उग्रह होने के बाद स्नानपर्व मनाती है।

चन्द्रमा

यह निश्चित है कि प्रागैतिहासिक काल मे भी लोग चन्द्रमा की कलाओं से परिचित थे और यह जानते थे कि प्रत्येक कला निश्चित समय पर उदय होती है। इसी ज्ञान के सहारे, बाद मे, चन्द्रवर्ष और चन्द्रतिथि की कल्पना हुई। वर्ष को बारह महीनों में बाँटने की प्रथा चली।

परन्तु चन्द्रमा के विषय में मनुष्य के ज्ञान में उन्नति उसी समय हुई जब १६०७ मे गैलीलियो ने दूरदर्शक का आविष्कार किया और उसका मुख चन्द्रमा की ओर घुमाया। तब मनुष्य ने पहली बार जाना कि जिसे उसने 'चन्द्रमा का कलंक' माना है, जिसे कभी किसी ने बुढ़िया कहा, किसी ने हिरण, वे वास्तव मे पहाड़ और घाटियाँ हैं। उस दिन से अब तक चन्द्रमा के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान का बराबर विस्तार होता गया है। जैसे-जैसे नये-नये अधिक अच्छे दूरदर्शक बनते गये, वैसे-वैसे हम मानो चन्द्रमा के सन्निकट आते गये। आज हम संसार के सबसे बड़े दूरदर्शक के सहारे से उसे इस तरह देख लेते हैं जैसे हम उसे कोरी आँखों से पचास मील दूर देख रहे हों। यदि चन्द्रमा पर ज़ैप्लेन जैसा कोई विमान उड़ रहा हो, तो हम उसे साफ़ देख लेगे।

इस महाकाश में चन्द्रमा हमारा सबसे निकट का पड़ोसी है। यही नहीं वह बड़ी श्रद्धा से हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है और सूर्य के चारों ओर की लम्बी यात्रा में बराबर उसका साथ देता है। पृथ्वी पर उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव भी पड़ता है। उसी के कारण हमारे समुद्रों में ज्वार-भाटे उठा करते है। संक्षेप में, चन्द्रमा से हम पृथ्वीनिवासियों का गहरा सम्बन्ध है।

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर वृत्त के रूप में नही, वरन् दीर्घ-वृत्त के रूप में, घूम रहा है। इससे पृथ्वी से इसकी दूरी सदा एक नही रहती। मध्यम दूरी २,४०,००० मील के लगभग है। यदि हम पृथ्वी से एक तेज़ वायुयान लेकर चलें और ३०० मील प्रतिघंटा के हिसाब से लगातार उड़ते रहें तो भी चन्द्रमा तक पहुँचने मे हमे १ महीने से अधिक समय लगेगा।

चन्द्रमा का पिंड सूर्य के बराबर जान पडता है, परन्तु यह भ्रम है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा हमारे बिलकुल पास है सूर्य कही दूर है। केवल अधिक पास होने के कारण चन्द्रमा सूर्य के बराबर बड़ा दिखलाई पड़ता है। वस्तुतः दोनों के अनुपातों को निकालने पर चकित रह जाना पड़ता है। पृथ्वी का व्यास ८,००० मील है, चन्द्रमा का व्यास इसका चौथाई है। अर्थात् लगभग २,१६० मील। हमारी पृथ्वी मे जितना पदार्थ है उतने से ४९ चन्द्रमा बन सकते है। यदि तराज़ू के एक पलड़े पर हमारी पृथ्वी हो, तो दूसरे पलड़े को उसके बराबर लाने के लिए हमें उस पर ८१ चन्द्रमा धरने पड़ेंगे।

पिंड के भार और उसके आकर्षण का बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। पिंड जितना अधिक भारी होता है, उतनी अधिक शक्ति से वह वस्तुओ को अपने केन्द्र की ओर खीचता है। किसी भी पिंड पर किसी वस्तु का वज़न इसलिए होता है कि वह वस्तु एक विशेष शक्ति से उस पिंड के केन्द्र की ओर खिंचती है। यदि यह शक्ति किसी प्रकार क्षीण हो जाये तो उसी वस्तु का वज़न कम हो जायगा, परन्तु उसमे तत्त्व वही रहेगा। हमारी पृथ्वी की आकर्षणशक्ति यदि $\frac{१}{६}$ रह जाय तो जो चीज़ आज एक मन भारी हो, कल वह तौलने पर पौने सात सेर से कम उतरे। चन्द्रमा की आकर्षणशक्ति पृथ्वी की आकर्षणशक्ति का छठा

अंश है। अतः जो चीज पृथ्वी पर एक मन भारी लगती है, वह चन्द्रमा पर पौने सात सेर से कम लगेगी।

चन्द्रमा के सम्बन्ध मे मनुष्य को जो बात लाखों वर्षों से मालूम है, वह यह है कि चन्द्रमा घटता-बढता रहता है। चन्द्रमा के घटते-बढ़ते रूपो का नाम 'कला' है। चन्द्रमा की कलाओं से प्राचीन ज्योतिषी भली भाँति परिचित थे ।

अब हम इन्हीं कलाओं के सम्बन्ध में विचार करेंगे ।

हमे दो बाते ध्यान मे रख लेनी चाहिए। पहली यह कि चन्द्रमा कुछ-कुछ गेंद-जैसा गोल है; चपटा नही है। दूसरी बात यह कि चन्द्रमा सूर्य की तरह गरम नही है, अत., वह अपने प्रकाश से नही चमकता। जिन भागो पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, केवल वही चमकते दिखाई पड़ते है। यदि हम एक गेंद हाथ में ले लें और उसे लैम्प के सामने रक्खें तो उसका आधा भाग प्रकाशित होगा, आधा अंधकार में रहेगा। चन्द्रमा के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक है। इस गेंद को हम चाहे जिस तरह रक्खे, उसका आधा भाग ही प्रकाशित होगा। इससे स्पष्ट है कि हम चन्द्रमा की तुलना किसी ऐसे गेंद से कर सकते हैं जिसका आधा भाग सफ़ेद रँगा गया हो, आधा काला। इस तुलना में एक बात और सहायता देगी। वह बात यह है कि चन्द्रमा चाहे जिस दशा में हो, उसका एक ही विशेष भाग प्रकाशित रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चन्द्रमा से रँगे हुए गेंद की तुलना सोलह आने पूरी उतर रही है। अब हम गेंद को चन्द्रमा मान लेते हैं और स्वयं अपने को पृथ्वी पर खड़ा हुआ प्राणी। इसके बाद हम गेंद को अपने सामने इस तरह रखते है कि उसका सफ़ेद भाग हमारे सामने रहता है। वह हमें पूर्ण-चन्द्र की भाँति दिखलाई देगा। अब यदि हम गेंद की दिशा नहीं बदलें

और उसे अपने सिर के ऊपर गोल चक्कर के रूप मे घुमाये तो हमे चन्द्रमा की अनेक कलाये उदय-अस्त होती दिखलाई पड़ेगी। किसी स्थिति से गेंद पूर्णकला-सा, किसी से अर्धकला-सा, किसी से क्षीणकला-सा दिखलाई पड़ेगा।

जब चन्द्रमा सूर्य की उसी दिशा में होता है जिस दिशा मे पृथ्वी है तो उसके पृष्ठ-भाग पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है। जो भाग हमारे सम्मुख रहता है, वह अँधेरा रहता है। फल यह होता है कि हमे चन्द्रमा दिखाई नही पड़ता। यह ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रमा कही चला नही जाता, वह केवल हमे दिखाई नही पडता। ज्योतिष-शास्त्र की परिभाषा में इस अवस्था को "अमावस्या" कहते हैं। दो रातो बाद चन्द्रमा इतना काफ़ी चल लेता है कि हमे सूर्य से प्रकाशित उसका कुछ थोड़ा भाग दिखलाई पड़ जाता है। इसी अनुपात मे थोड़ा अंधकार-पूर्ण भाग हमारे सामने से हट जाता है। उस समय आकाश मे चन्द्रमा हँसिये के रूप में देखा जा सकता है। यह "द्वितीया" की स्थिति है। एक सप्ताह पश्चात् प्रकाशित भाग का लगभग आधा अंश हमे दिखलाई दे जाता है। वह "अर्द्धचन्द्र" के रूप में हमारे सामने आता है। इसके एक सप्ताह बाद चन्द्रमा सूर्य से पृथ्वी की विपरीत दिशा मे चला जाता और तब इसका सारा प्रकाशित भाग हमारी आँखों के सामने आता है। चन्द्रमा की इस अवस्था को "पूर्णिमा" कहते है। इसके उपरांत चन्द्रमा की कलाये घटने लगती हैं। एक सप्ताह बाद फिर अर्ध-चन्द्र के दर्शन होते हैं और उसके एक सप्ताह बीत जाने पर अमावस्या हो जाती है। "द्वितीया" के दिन फिर चन्द्रमा के दर्शन होते है। इस प्रकार चक्र चलता रहता है।

साधारणतः हम यह समझते हैं कि केवल चन्द्रमा ही चल रहा

है। बात सच है। सचमुच, चन्द्रमा हमारी पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है। परन्तु यह सत्य आधा है। दूसरा आधा सत्य यह है कि पृथ्वी स्वयं अपनी धुरी पर घूमती है और इससे आकाश का प्रत्येक पिंड घूमता हुआ दिखाई देगा। यदि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा नही करता तो भी पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण चलता हुआ दिखाई पड़ता। इस तरह हम देखते है कि वास्तव में चन्द्रमा की गति दो प्रकार की गतियों का सम्मिश्रण है। पृथ्वी के अपने परिमाण के कारण ही चन्द्रमा हमे पूर्व मे उगता और पश्चिम में डूबता दिखलाई पड़ता है। चन्द्रमा की स्वयं अपनी गति का परिणाम यह निकलता है कि चन्द्रमा का स्थान बराबर बदला करता है। अभी आज वह तारों के एक समूह में घूम रहा है, अभी कल दूसरे समूह मे पहुँच गया। उसका स्थान प्रतिदिन पहले दिन की अपेक्षा कुछ पूर्व की ओर रहता है। यदि हम चन्द्रमा को आज किसी विशेष तारा-समूह के पास देखे तो कल वह उस समूह से १३° पूर्व मे होगा। इसका फल यह होता है कि चन्द्रमा प्रत्येक दिन ५० मिनट की देर करके आकाश में उगता है।

अमावस्या का चन्द्रमा सूर्य की उसी ओर होता है, जिस ओर पृथ्वी है। सूर्योदय के समय वह उदय होता है और ठीक सूर्यास्त के समय डूब जाता है। फल यह होता है कि हम उसे देख नहीं पाते। दूसरे दिन वह सूर्योदय के एक घंटे बाद उगता है और सूर्यास्त के एक घंटे बाद डूबता है, अतः वह सूर्यास्त के एक घंटे बाद तक पश्चिमी आकाश में दिखलाई पड़ता है। उसका रूप धनुषाकार होता है। प्रत्येक दिन चन्द्रमा की कला पिछले दिन की कला से कुछ बढ़ जाती है। अन्त में अर्धचन्द्र और पूर्णचन्द्र के दर्शन होते हैं। साथ ही, प्रत्येक दिन वह पिछले दिन से अधिक देर में

उगता है और प्रत्येक रात चाँदनी पिछली रात की अपेक्षा अधिक देर तक रहती है ।

पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा पूर्व की दिशा में उस समय उदय होता है जब सूर्य पश्चिम की दिशा में डूब रहा होता है। अतः, चाँदनी रात भर रहती है। पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा की कलायें घटने लगती हैं, एक सप्ताह बाद वह अर्धचन्द्र रह जाता है । साथ ही, वह प्रत्येक दिन पिछले दिन की अपेक्षा बराबर देर करके उगता है। कृष्णपक्ष का अर्ध-चन्द्र लगभग आधी रात के समय उदय होता है। इसके उपरान्त उसकी कलायें और क्षीण होती जाती है। उसका उदय पिछले दिन की अपेक्षा देर में होता है। अमावस्या आ जाती है। इस दिन चन्द्रोदय और सूर्योदय साथ-साथ होते है; इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा एक ही समय अस्त होते है । अतः चन्द्रमा को देखना असम्भव होता है । यह चक्र चलता रहता है ।

पृथ्वी का चक्कर लगाने में चन्द्रमा को २७ दिन ७ घंटे लगते हैं, परन्तु पृथ्वी स्वयं सूर्य की परिक्रमा करती है । इससे समय कुछ अधिक जान पड़ता है। दो चन्द्रोदयों मे २९ दिन १२ घंटे का अन्तर रहता है।

यह बात सुनकर आपको कदाचित् आश्चर्य होगा कि हमारी पृथ्वी की तरह चन्द्रमा भी अपनी धुरी पर घूम रहा है। परन्तु अपनी धुरी पर एक बार परिभ्रमण करने मे चन्द्रमा को उतना ही समय लगता है जितना एक बार पृथ्वी की परिक्रमा में। इसका फल यह होता है कि चन्द्रमा का एक ही मुख हमारे सामने आता है। दूसरा मुख कैसा है, इस सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं कह सकते। परन्तु हमारा अनुमान है कि वह भी इसी मुख की तरह होगा। इस अनुमान के कुछ कारण भी हैं। वस्तुतः जिस मुख को पूर्णिमा के दिन हम देखते हैं, वह चन्द्रमा के आधे

भाग से अधिक होता है। उससे हमें चन्द्रमा के धरातल का ५९ प्रतिशत अंश दिखलाई दे जाता है। केवल ४१ प्रतिशत अंश छिपा रहता है। दूरदर्शक में इस आधे से अधिकवाले अंश और हमें दिखलाई पड़नेवाले आधे अंश मे कोई अन्तर नही दीख पड़ता। चन्द्रमा का आधे से अधिक भाग देख सकना इसलिए सम्भव है कि पृथ्वी की कक्षा की तुलना मे चन्द्रमा की कक्षा कुछ अधिक झुकी हुई है और हमें चन्द्रमा के दोनों ध्रुवों के आगे का धरातल भी दिखलाई पड़ जाता है।

आधुनिक ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा महाश्मशान है। वहाँ कभी किसी प्रकार का परिवर्तन ही नहीं होता। न जीव-जन्तु हैं, न उद्भिज। मनुष्य का क्या कहना। वहाँ अनन्त नीरवता है; मृत्यु का अखंड, कठोर शासन है। गैलीलियो ने अपने दूरदर्शक से देखा तो उसे इसमें संदेह नहीं रहा कि चन्द्रमा पर पहाड़, पहाड़ियाँ इत्यादि हैं। काले धब्बे उसके छोटे दूरदर्शक मे बहुत साफ नही दिखलाई पड़ते थे, अतः उन्हे उसने समुद्र समझ लिया। आजकल की बड़ी-बड़ी शक्तिशाली दूरबीनों से पता चला है कि गैलीलियो ने इस सम्बन्ध में ग़लती की थी। जिसे उसने समुद्र समझा था, वह वास्तव मे सपाट, ऊसर, पथरीला मैदान है। चन्द्रमा में न हवा चलती है, न आँधी उठती है; न पानी बरसता है। जल का वहाँ नाम नहीं। इसलिए इन मैदानों में किसी प्रकार का परिवर्तन होता दिखलाई नहीं देता।

छोटे-से दूरदर्शक में देखने पर भी यह साफ़ पता चल जाता है कि चन्द्रमा पृथ्वी से बिलकुल भिन्न है। पृथ्वी का धरातल समतल है। कहीं-कहीं पहाड़ अवश्य है परन्तु वह इतना ऊबड़-खाबड़ नही है जितना चन्द्रमा का धरातल। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा के धरातल में गहरे-गहरे खड्ड है जो हमारी पृथ्वी के ज्वालामुखियों के मुख-जैसे जान पड़ते हैं।

इसी समता के कारण इन्हें "ज्वालामुखी के मुख" कहा भी जाता है। इनमें से कुछ तो इतने छोटे है कि हम उन्हे केवल बहुत ही बड़े दूर-दर्शकों के सहारे देख सकते है, परन्तु कुछ का व्यास १०० मील या इससे भी अधिक है। अब तक लगभग ३२,००० खड्ड (मुख) देखे जा सके है।

ये "ज्वालामुख" प्याले या गहरी थालियों के समान है। कुछ की दीवार २०,००० फ़ुट ऊँची है। १,००० फ़ुट से कम ऊँची दीवारोंवाले प्याले तो बहुत ही थोड़े मिलेंगे, बीच मे गहरा गड्ढा होता है और उसे घेरकर १,००० फ़ुट की उँचाई से लेकर २०,००० फुट की उँचाई तक के पहाड़ पंक्ति बाँधे खड़े होते है। कही-कहीं ये "ज्वालामुख" सामान्य धरातल से बहुत ऊँचे उठे हुए है जैसे हाथ पर आबला उठ आया हो। बहुत-से ज्वालामुखों मे एक या कई चोटियाँ दिखलाई पड़ती है। ये उन पहाड़ों की चोटियाँ है जो प्यालो के बीच मे उठ खड़े हुए है। चन्द्रमा के धरातल पर कही-कही ये ज्वालामुख बहुत सटे-सटे हैं। कही-कहीं ये इस प्रकार दिखलाई देते है जैसे पुराने ज्वालामुख से कोई नया ज्लावामुख फूट पड़ा हो। पहले यह समझा जाता था कि इन ज्वालामुखों के बनने का कारण भी वही है जो कारण पृथ्वी पर ज्वालामुखियो की उत्पत्ति का है। परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि उस प्रकार इतने बड़े ज्वालामुख नही बन सकते। सम्भव है, ज्वालामुखी पहाड़ों से निकला हुआ पदार्थ इसलिए बहुत दूर और बहुत ऊँचा जा सका हो कि चन्द्रमा की आकर्षणशक्ति पृथ्वी की अपेक्षा कही कम है; पहले निकलनेवाले पिघले पत्थर दीवार-से हो गये हों और पीछे जो पिघला पत्थर निकला वह धीरे से फैल गया और समतल के रूप में दिखाई पड़ने लगा। यही समतल इन प्यालों की तली है।

कुछ लोगो का मत है कि इन ज्वालामुखों की उत्पत्ति एक दूसरे ढंग से हुई है। यदि पिघले हुए गुड़ को ठंडा किया जाय तो उसमें से बड़े-बड़े गैस के बुलबुले निकलकर सतह पर टूटते हुए दिखलाई देते है। सम्भव है, जब चन्द्रमा बहुत गरम और पिघला हुआ था उसके ठंडे होने की प्रक्रिया मे इसी प्रकार के बुलबुले उठे हों। इन बुलबुलों के फूट जाने से वृत्ताकार ज्वालामुखी बन गये होंगे। यह मत बहुत थोड़े वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है।

परन्तु एक तीसरा मत है जिसे स्वीकार करनेवालों की संख्या कही अधिक है। सम्भव है, जब चन्द्रमा अच्छी तरह ठोस नही बन पाया हो, उस पर प्रचड उल्कापात हुए हो। लोगों का विश्वास है कि पहले हमारे सौरमडल में कही अधिक प्रचंड उल्कायें रही होंगी और ये बड़ी प्रचंडता से टूटकर गिरती होगी। हमारे वायुमडल मे आकर बहुत-सी उल्काये जलकर समाप्त हो जाती है। वे हमे अधिक हानि नही पहुँचातीं। परन्तु चन्द्रमा पर वायुमंडल नही है जो उल्काओं की प्रचंडता को कम कर दे। वहाँ उल्काये भयंकर वेग से गिरी होंगी। संभव है, उन्ही की चोट से ये गड्ढे (ज्वालामुख) बने हो। जो पिघला हुआ पदार्थ भीतर से निकला वही गड्ढे के चारो ओर दीवारों के रूप मे ठोस हो गया। उल्का-द्वारा किये गये इस प्रकार के उत्पात से हम अपरिचित भी नहीं है। अरिजोना नामक स्थान पर इस तरह का गड्ढा पृथ्वी पर भी मिलता है। जो हो, इन गड्ढों का कारण कुछ भी हो, हैं ये बड़े विचित्र।

चन्द्रमा पर पहाड़ों की दस शृंखलायें है। जिस प्रकार चन्द्रमा का धरातल ऊबड़-खाबड़ है, उसी प्रकार ये शृंखलायें भी हैं। ये पहाड़ पृथ्वी के पहाड़ों के समान ही है। इनकी चोटियाँ

साधारणतः ५,०००, १०,००० और १५,००० तक ऊँची हैं। कुछ चोटियाँ इससे भी अधिक ऊँची हैं। चन्द्रमा की सबसे बड़ी पर्वत-श्रेणी अपेनाइन्स है जो ६४० मील लम्बी है और जिसमें ३,००० से ऊपर ऊँची चोटियाँ है। चन्द्रमा के छोटे आकार का ध्यान रखते हुए हमे यह कहना पड़ता है कि उसके पर्वत पृथ्वी से अधिक ऊँचे है। कुछ चोटियाँ २७,००० फुट तक ऊँची हैं। तुलना के लिए हम यह बता देना चाहते है कि पृथ्वी की सबसे ऊँची पर्वत-चोटी गौरीशंकर २९,००२ फ़ुट ऊँची है।

पहाड़ों के अतिरिक्त चन्द्रमा के धरातल पर बड़ी दरारें भी हैं जो पहाड़ों या मैदानों के फट जाने से बन गई हैं। ये दरारें लगभग आधे मील चौड़ी हैं और इनमें से कुछ कई सौ मील लम्बी है।

परन्तु चन्द्रमा के धरातल पर इन ज्वालामुखों, पहाड़ों और दरारों से भी अद्भुत एक वस्तु है। ये चमकीली धारियाँ है जो बहुधा सैकड़ों मील लम्बी होती है। यह हलके रंग की धारियाँ कुछ ज्वालामुखों से निकलती दिखलाई पड़ती हैं और दूर तक फैली जान पड़ती हैं। ये सभी दिशाओं में चली गई है। अनुमान किया जाता है कि बहुत समय हुआ जब चन्द्रमा ठंडा हो रहा होगा तो उसके भीतर से बहुत-सी गैस निकली होगी। तंग मुख से निकलने के कारण इसने भीतर से धरातल पर दबाव डाला होगा जिससे धरातल इस रूप में फट गया।

अपनी धुरी पर चन्द्रमा इतनी धीमी चाल से चक्कर लगाता है कि वहाँ प्रत्येक स्थान पर १४ घंटे की रात होगी और १८ घंटे का दिन। दिन के समय धरातल इतना गरम हो जाता है कि पानी उबलने लगे, वहाँ रात को तापक्रम इतना कम हो जाता है कि हिमांक से भी कई

अंक नीचे। यदि कोई व्यक्ति चन्द्रमा पर निर्वासित कर दिया जाय तो वह वहाँ पहुँचकर या तो खौल जायेगा या सर्दी मे ऐंठ जायगा।

सूर्य का कुटुम्ब

सूर्य का कुटुम्ब बहुत बड़ा है। उसमे अनेक सदस्य है और इन सब सदस्यों का आकार-प्रकार, उनका कुटुम्ब मे महत्त्व, उनकी आयु और उनका स्थान—सब भिन्न-भिन्न है।

पहले हम सूर्य के पुत्रों का परिचय देगे। इन्हे ज्योतिषी 'ग्रह' कहते है।

हमारे पूर्वज ग्रहों की सख्या ९ मानते थे। दूसरे शब्दों में उनके अनुसार सूर्य के ९ पुत्र थे। हमारे कितने ही धर्मग्रंथों में "नवग्रह" शब्द मिलता है। पूजा के समय जिस प्रकार कुलपति सूर्य (अथवा सविता) की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार उसके पुत्रों (ग्रहों) को भी शान्त किया जाता है। ये ग्रह इस प्रकार थे—चन्द्र, राहु, केतु, बुध, शुक्र, मंगल, सूर्य, बृहस्पति और शनि। वास्तव मे राहु और केतु चन्द्रमा के दो प्रांतों का ही नाम था। इन्हें भी भारतीय ज्योतिषी चन्द्रमा के साथ गिन लेते थे। वास्तव में वे 'ग्रह' शब्द का वह अर्थ नही लगाते थे जो हमने इस पुस्तक मे लगाया है। हमने इस शब्द को "भ्रमणशील पिंड" के अर्थ में प्रयुक्त किया है। परन्तु भारतीय जोतिष में इनका नाम फलित के विचार से रक्खा गया था। फलित का कहना है कि ये पिड प्राणियों की दशा को अपने अधिकार मे रखते हैं अथवा "ग्रहण करते है।" जिस अर्थ में हमने ग्रह शब्द का प्रयोग किया है उस अर्थ में चन्द्रमा और सूर्य ग्रह नहीं है; राहु और केतु तो केवल पृथ्वी के उपग्रह चन्द्रमा की दो भिन्न अवस्थायें-

मात्र है। अतः भारतीय ज्योतिषियों के नव-ग्रह-समूह मे से केवल पाँच, आधुनिक दृष्टि से, ग्रह ठहरते है—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि। जब पश्चिमी ज्योतिषियो ने यह खोज की कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है तो उन्हे एक छठा ग्रह मिल गया। परन्तु अब ज्योतिषियों ने—उरण, वरुण और कुबेर—का भी पता लगा लिया है। इसलिए इस समय तक जो खोज हुई है उसके अनुसार सूर्य के १० पुत्र है।

ये सूर्य के पुत्र गुरुत्वाकर्षण-द्वारा उसका अनुशासन पूर्णत. मानते हैं और भक्तिपूर्वक उसकी प्रदक्षिणा करते है।

यदि हम सूर्य पर हों और हमे आकाश की यात्रा करते हुए अन्तिम ग्रह की ओर जाना हो तो हमे क्रमशः बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, शनि, वरुण और उरण होकर कुबेर पर पहुँचना होगा।

१—बुध

सूर्य से सबसे पास बुध है। पहले हम इसी को लेंगे।

आकाश में बुध को देखना बडा कठिन है। कोई-कोई तो आयु भर इसे नहीं देख पाते। कारण यह है कि बुध को देखने के लिए हमें प्रत्येक दिन केवल दो घंटे मिलते है—एक घंटा सायंकाल के समय और एक घंटा प्रातःकाल के समय। बुध सूर्य के इतना पास है कि वह सूर्य से दो घंटे पहले उदय होता है और दो ही घंटे बाद अस्त हो जाता है। सूर्योदय और सूर्यास्त के एक घंटे पहले और एक घंटे बाद तक क्रमशः पूर्व और पश्चिम का आकाश इतना लाल और चमकीला होता है कि रंग और चमक में बुध दिखलाई नहीं पड़ता। दूसरी बात यह है कि वह क्षितिज से अधिक ऊपर नहीं उठ पाता। शहर

के पास क्षितिज का आकाश कभी ठीक स्वच्छ नहीं दिखलाई देता। उस पर गर्द चढ़ी रहती है। इसलिए शहर के लोग बुध को बहुधा देख नही पाते। हाँ, देहात मे इस ग्रह का देख लेना इतना कठिन नही परन्तु तब भी देखनेवाले को सचेष्ट रहना पड़ता है।

बुध को देखने के लिए सबसे अच्छा समय वर्षा-ऋतु के बाद है। उस समय वायु मे धूल के कण नही रह जाते और आकाश धुलकर खूब स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगता है। उस समय यह क्षितिज के थोड़ा ऊपर चमकते हुए तारे के रूप में देखा जाता है। इसी लिए जन-साधारण भ्रम मे पड़कर इसे बुध का "तारा" कहते हैं।

बुध का ग्रह खूब चमकीला है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह सूर्य से सबसे कम दूर है। इसको सबसे अधिक प्रकाश और गर्मी मिलती है। बुध पर हमारी पृथ्वी से कई गुना तेज़ धूप और गर्मी पड़ती होगी। वहाँ पानी किसी भी रूप में नही होगा। उसके धरातल के पहाड़, मैदान और गड्ढे सब झुलसे हुए-से होगे। मुसलमानों का विश्वास है कि प्रलय के दिन सूर्य एक नेज़े के बराबर ऊँचा रह जायगा और सब प्राणी झुलसकर मृत्यु को प्राप्त होंगे। बुध पर ऐसी ही प्रलय की छाया है। वह तपता हुआ महान् श्मशान है।

बुध सबसे हलका पिंड है। यह सम्भावना की जाती है कि बुध पर किसी प्रकार का वायुमंडल नहीं होगा। वायु के कण कभी के उस ग्रह से उड़कर बाहर पहुँच गये होंगे।

यह भी पता चलता है कि बुध पर बादल नहीं है। जब जल ही नहीं तो बादल कहाँ से होंगे? इससे इसके पत्थर सूर्य की गर्मी से तपकर गाढ़े रंग के हो गये होंगे।

बुध पर भी उसी तरह पहाड़ होंगे जिस तरह चन्द्रमा पर है परन्तु यह ग्रह इतना छोटा है और इतनी दूर है कि हम इसके पहाड़ो को देख नही सकते।

चन्द्रमा की तरह बुध की भी कलाये है और जिस तरह चन्द्रमा का एक ही मुख पृथ्वी की ओर रहता है इससे यह साफ़ अनुमान किया जा सकता है कि जहाँ बुध का एक भाग सूर्य से प्रकाशित होकर तपता होगा वहाँ उसके दूसरे भाग मे सूर्य की रोशनी कभी नही पहुँचती होगी और वह बर्फ़ की तरह ठंडा होगा।

बुध सूर्य और पृथ्वी के बीच मे बहुत कम आता है। इसका कारण यह है कि उसकी धुरी सूर्य के मार्ग से तिरछी रहती है। जब वह सूर्य के सामने पड़ जाता है तो वह सूर्य पर छोटे-से गोल धब्बे के रूप में दिखाई देता है। परन्तु उसे देखने के लिए किसी दूरबीन का सहारा लेना होगा। सन् १९४० में १२ नवम्बर को ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई थी। १३ वर्ष बाद फिर ऐसा होगा।

२—शुक्र

संध्या के समय जब सूर्यास्त हो चुका होता है, हम आकाश में सबसे पहले एक बहुत ही तेज़ चमकनेवाले नक्षत्र को उगते हुए देखते हैं। यह तारा पश्चिम की दिशा मे दिखलाई देता है और सूर्यास्त के ४ घंटे बाद तक देखा जा सकता है। यह तारा गोधूलि के समय उगता है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे अधिक चमकीला होता जाता है। साँझ के अँधेरे में यह चमकते हुए हीरे की तरह दिखाई पड़ता है। लोग इसे 'संध्या-तारा' कहते हैं। इसी प्रकार का एक तारा हमें सूर्योदय के समय से कुछ पहले पूर्व में दिखलाई देने लगता है।

यह तड़का होने के कुछ पहले आकाश के इस भाग में उग आता है और फिर सूर्योदय होने पर धीरे-धीरे सूर्य की किरणों में इसका लोप हो जाता है। जन-साधारण इसे 'प्रभात-तारा' कहते हैं। परन्तु वास्तव में 'संध्या-तारा' और 'प्रभात-तारा' दो तारे नहीं हैं। ये दोनों एक ही हैं। इन्हें 'तारा' कहना भी भूल है। वास्तव में यह शुक्र ग्रह है जो दो भिन्न परिस्थितियों में हमें इस प्रकार चमकता दीख पड़ता है।

आकाश का सौन्दर्य, विशेषकर संध्या के समय, इस तारे के कारण बहुत बढ़ जाता है। इसका प्रकाश मनोहर, स्निग्ध और स्वच्छ श्वेत वर्ण का होता है।

बुध की तरह शुक्र में भी कलायें होती हैं जो दूरबीन से देखने पर दिखलाई दे जाती है। जब इसका पूर्णमंडल हमें दिखलाई देता है तो यह हमसे बहुत दूर रहता है; जब इसकी कला पतले हँसिए की तरह क्षीण रहती है तो यह हमसे सबसे निकट रहता है।

शुक्र इतना चमकदार है कि कभी-कभी रात के समय इसकी परछाईं पड़ती है। यों साधारणतः हमारी आँखें सबसे पहले उसी की ओर उठती हैं। परन्तु यदि शुक्र का भली भाँति अध्ययन करना हो तो उसे सबेरे के समय देखना चाहिए। सूर्य का प्रकाश इसके लिए बड़ी बाधा है, अतः इसको किसी ऐसी आड़ से देखना चाहिए जिससे वह तो दिखाई दे परन्तु सूर्य दृष्टि से ओझल रहे। ऐसा करने से हम आकाश में शुक्र के पथ से परिचित हो जायेंगे। यह ध्यान रखना चाहिए कि वह खो न जाय, नहीं तो नंगी आँख से हम इसे खोजकर निकाल नहीं सकेंगे।

हम कह चुके हैं कि शुक्र की चमक बहुत तेज़ है। इससे आँखों को चकाचौंध-सी हो जाती है और हम इसकी सतह की जाँच नहीं कर सकते। अतः शुक्र से अच्छी तरह परिचित होने के लिए हमें दूरबीन का सहारा लेना चाहिए।

दूरबीन से देखने पर कई महत्त्वपूर्ण बातें शुक्र के सम्बन्ध में ज्ञात होती हैं। उस समय हम इसकी कलायें स्पष्ट देख सकते हैं। पता चलता है कि पृथ्वी की तरह शुक्र पर भी वायुमंडल है। शुक्र मे बादल भी उठते है जिनके कारण उस पर कभी कभी हलके रंग के भद्दे धब्बे दिखलाई पड़ते हैं। बुध की तरह शुक्र भी सूर्य के सामने आकर गोल धब्बे के रूप में दिखलाई देने लगा है। इस समय हम इसके चारों ओर प्रकाश का घेरा देख सकते है।

शुक्र का कोई उपग्रह नहीं है। कोई दूसरा पिंड इसकी प्रदक्षिणा करता हुआ दिखलाई नही देता। परन्तु यह स्वयं २२५ दिनों में सूर्य की परिक्रमा करता है । अपनी धुरी पर यह कितने दिन में घूम लेता है, यह हम ठीक-ठीक नहीं बता सकते क्योंकि शुक्र पर पहाड़ आदि कोई ऐसी चीज़ नही दिखलाई देती जिससे इसके धरातल को चिह्नित किया जा सके। शुक्र का धरातल कैसा है, यह अभी हमारे लिए रहस्य है।

क्या शुक्र पर प्राणी हैं? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का उत्तर आशापूर्ण है। बात यह है कि प्राणियों के जीवित रहने के लिए जल, वायु, विशेष तापक्रम और भोजन के लिए उद्भिज आदि की आवश्यकता है। यह बात निर्भ्रान्त है कि शुक्र पर वायु और जल की मात्रा अवश्य है, चाहे ये दोनों वस्तुएँ इतनी अधिक मात्रा में वहाँ न हों जितनी अधिक मात्रा में ये हमारी पृथ्वी पर हैं। यद्यपि सूर्य से अधिक समीप

होने के कारण शुक्र का तापक्रम हमारी पृथ्वी के तापक्रम से दुगना होगा अर्थात् वहाँ हमारे यहाँ की गर्मी से दुगनी गर्मी पड़ती होगी, परन्तु घने वायुमंडल और बादलों के कारण शुक्र जीवधारियों के लिए उपयुक्त हो सकता है।

३—पृथ्वी

बुध और शुक्र के बाद हमारी पृथ्वी आती है। आकार में यह बुध और शुक्र दोनों से बड़ी है परन्तु शुक्र से बहुत अधिक बड़ी नही। यह अपनी धुरी पर २४ घंटे में घूम जाती है और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने मे इसे ३६५ दिन लगते है।

ऊपर बुध के वर्णन मे हमने बतलाया है कि उसका गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है और इस कारण उस पर वायुमंडल नहीं है। पृथ्वी के सम्बन्ध में ऐसी बात नही। शुक्र और पृथ्वी दोनों इतने बड़े है कि उनका आकर्षण वायु के कणों को उनके धरातल से बाँधे रखता है। परन्तु दोनों के वायुमंडल में अन्तर है। रश्मि-विश्लेषण-यंत्र के द्वारा परीक्षा करने से शुक्र के वायुमंडल में आक्सिजन (प्राण-वायु) की उपस्थिति का पता नहीं चलता। यदि हम थोड़ा विचार करें तो कारण हम समझ सकेंगे। पृथ्वी पर जो वनस्पतियाँ और उद्भिज हैं उनसे प्राण-वायु बराबर निकलती रहती है। यदि ऐसा न होता तो साँस लेते-लेते, वस्तुओं के जलने और मोरचना लगने से हमारे वायुमंडल की प्राणवायु कभी की चुक गई होती। इसी तर्क के द्वारा हम यह सिद्ध करते हैं कि शुक्र में प्राण-वायु का अभाव है।

इस पृथ्वी से हम भली भाँति परिचित हैं, इसलिए हमें इसके सम्बन्ध में अधिक लिखना नहीं है। परन्तु परिचय अधिक होने के

कारण ही हम कई बातें समझ नहीं पाते। हम आकाश में दूसरे ग्रहों को चमकता हुआ देखते है। वे हमें उदय और अस्त होते जान पड़ते हैं। परन्तु आकाश में स्वयं हमारी स्थिति कैसी है, यह बात हम नहीं जानते।

मान लीजिए कि अन्य ग्रहों पर भी हमारे-जैसे समझदार प्राणी हैं। वहाँ से हमें अपनी यह पृथ्वी किस रूप में दिखाई देगी? उन्हें हमारी पृथ्वी आकाश में उसी प्रकार चमकती हुई दिखलाई देगी जिस प्रकार हमें अन्य सब ग्रह दीख पड़ते हैं। हमारा चन्द्रमा उन्हें छोटे-से चमकीले तारे की तरह दिखलाई पड़ेगा जो अपने से बड़े तारे की परिक्रमा कर रहा होगा। परन्तु किसी ग्रह के निवासी यह नही जान सकेंगे कि पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन है या नहीं। जिस प्रकार हम उनके सम्बन्ध में अनुमान लगाते है, उसी प्रकार उन्हें अनुमान तक ही सीमित रहना होगा। बड़ी-बड़ी दूरबीनों के सहारे बादल दिखलाई देंगे और ऋतुओं के परिवर्तन के साथ हर उद्भिज और पिघलती हुई बर्फ़ का आभास होगा। पृथ्वी के प्रकाश की परीक्षा करने से उन्हें उस पर भाप और प्राण-वायु की उपस्थिति का पता चल जायगा और वे यह बात भी जान लेंगे कि पृथ्वी के ऊपर तापक्रम की मात्रा इतनी कम है कि उसमें जीवन का विकास हो सकता है।

४—मंगल

पृथ्वी के बाद सौरपरिवार में मंगल का स्थान है। इसका रंग सिंदूर की तरह लाल है परन्तु हर दूसरे साल यह अंगारे की तरह चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। बहुधा ऐसा होता है कि संध्या के समय आकाश में शुक्र और मंगल के ग्रह पास-पास दिखलाई देते हैं। उस समय शुक्र के शुक्ल वर्ण के सामने मंगल का रक्तवर्ण स्पष्ट हो जाता है।

परन्तु मंगल की लाली सदा एक-जैसी नहीं रहती। इसका कारण यह है कि मंगल हमसे समान ही दूरी पर नही रहता। प्रत्येक २ वर्ष १ महीना १८·७ दिन बाद मंगल हमसे निकटतम दूरी पर आ जाता है। उस समय वह ख़तरे की लाल रोशनी की तरह चमकता दिखलाई पड़ता है। उसका आकार भी सदा एक-सा नहीं रहता। प्रत्येक १५ या १७ वर्ष में वह हमसे इतना निकट हो जाता है कि वह हमें विशेष रूप में बड़ा लगता है। उस समय यह सूर्य से विपरीत दशा में रहता है, अतः यह सूर्यास्त के समय उगता है और सूर्योदय के समय डूबता है। इसलिए यह हमे रात भर दिखलाई पड़ता है। दूरदर्शक (दूरबीन) मे देखने से यह एक रुपये से छोटा दिखलाई देगा और इसकी चमक ध्रुवतारे की अपेक्षा ५५ गुना अधिक होगी। जब सूर्य और मंगल एक ही दिशा मे रहते है उस समय मंगल हमको बहुत छोटा दीख पड़ता है परन्तु फिर भी वह ध्रुवतारे की अपेक्षा डेढ़-गुना चमकदार रहता है।

मंगल का व्यास केवल ४,२१५ मील है। यह संख्या पृथ्वी के व्यास की संख्या से आधी है। इस ग्रह का आकर्षण हमारी पृथ्वी के आकर्षण की अपेक्षा लगभग तिहाई है।

बुध और शुक्र की तरह मंगल मे भी कलायें दिखलाई पड़ती हैं परन्तु जब उसकी कला सबसे छोटी होती है तब भी वह शुक्लपक्ष की एकादशी के चन्द्रमा के समान होता है। मंगल मे धनुष-जैसी कला नही होती।

मंगल में ऋतुओं की क्या दशा होगी, यह प्रश्न भी कौतूहल-जनक है। पहली बात तो यह है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर जितने समय में घूमती है (३६५ दिन), मंगल उससे दुगने समय में सूर्य की

परिक्रम करता है। इससे वहाँ का वर्ष हमारे वर्ष से दुगना है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि मंगल में ऋतुएँ पृथ्वी की ऋतुओं से दुगनी लम्बी होती होंगी। वैज्ञानिकों ने प्रमाणों-द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि मंगल की धुरी उसकी कक्षा से लगभग उतनी ही तिरछी है जितनी पृथ्वी की धुरी पृथ्वी की कक्षा से। इस बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि मंगल के भू-भागों में भी ऋतुओं का विभाग हमारी पृथ्वी-जैसा होगा। वहाँ भी जाड़े और गर्मी की ऋतुएँ होती होंगी परन्तु ये ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से अधिक दूर है, अतः सर्दी अधिक पड़ती होगी। एक बात और है। पृथ्वी की कक्षा की अपेक्षा मंगल की कक्षा अधिक दीर्घ वृत्ताकार है। इसलिए कभी-कभी मंगल पृथ्वी से बहुत दूर पड़ जाता होगा और उस पर अत्यन्त कड़ी सर्दी पड़ती होगी।

मंगल के ऊपर के धरातल के चिह्न छोटे दूरदर्शक से भी सुगमता से देखे जा सकते हैं। इससे हमे उसके परिभ्रमणकाल का ज्ञान बहुत ठीक है। मंगल अपनी धुरी पर २४ घंटे ३७ मिनट २२·५ सेकेंड में घूम जाता है। यदि हम मंगल पर पहुँच जायँ तो हमारे रात-दिन उतने ही बड़े होंगे जितने यहाँ पृथ्वी पर होते हैं। परन्तु मंगल का वर्ष हमारे वर्ष से दुगना होगा क्योंकि मंगल को सूर्य की परिक्रमा करने में ६८७ दिन लगते हैं।

मंगल और पृथ्वी की अनेक बातों में साम्य है। इसलिए वैज्ञानिकों के सामने बहुत समय से यह प्रश्न उठा हुआ है—क्या मंगल पर जीवन है ? क्या वहाँ हमारे-जैसे प्राणी हैं ? दूरदर्शक के सहारे मंगल का अध्ययन करने पर कुछ विशेष प्रकार के चिह्नों का पता लगता है जिनसे वहाँ मनुष्य-जैसी किसी बुद्धिमान् जाति के प्राणियों के रहने की कल्पना की गई है।

दूरदर्शक में मंगल केवल आध इंच का चमकीला वृत्त दिखलाई पड़ता है। उस पर न किसी प्रकार की रेखायें दिखलाई पड़ती हैं, न चिह्न। इसका कारण यह है कि मंगल पर जो रेखाएँ हैं वे बहुत फीके रंग की हैं। मंगल के तेज़ लाल रंग के सामने ये रेखायें फीकी पड़ी रहती हैं।

साधारणतः दूरदर्शक में मंगल पर नारंगी रंग के टुकड़े दिखलाई पड़ते हैं। उन पर मैले हरे रंग के चिह्न फैले हुए हैं। ये चिह्न उत्तर और दक्षिण में जाकर समाप्त हो जाते हैं। जहाँ ये समाप्त होते है, वहाँ कभी-कभी सफेद और चमकीले गोल टुकड़े दिखलाई देते हैं। इन हरी रेखाओ और लाल धब्बो ने वर्षो तक मनुष्य को परेशान किया है। पहले लोगों ने समझा कि लाल भाग समुद्र है परन्तु अब यह निश्चय हो गया है कि ये समुद्र नही हैं। वास्तव में ये मरुभूमियाँ है। यदि ये वस्तुतः समुद्र होते तो उन पर सूर्य की धूप अवश्य पड़ती और उनकी जलराशि में सूर्य का प्रतिबिंब अवश्य दिखलाई देता। ऐसी कोई बात देखने में नहीं आती। अब तो उनमें हरी-हरी रेखायें भी दीख पड़ती हैं और कभी स्वयं उनका रंग बदला करता हैं। उत्तर और दक्षिण भागों मे जो सफ़ेद गोल टुकड़े टोपी जैसे पाये जाते हैं, वे किसी ऋतु में बड़े और किसी में छोटे हो जाते हैं। अतः, अब यह निश्चय किया गया है कि वास्तव में ये टुकड़े ध्रुवों को सूचित करते हैं। वहाँ बर्फ़ जमी रहती है। जब गर्मी पड़ने लगती है तो ये ध्रुवचिह्न पिघलकर छोटे हो जाते हैं।

परन्तु मंगल की हरे-नीले रंग की रेखाओं, "नहरों" की चरचा सबसे अधिक हुई है। पहले-पहल इटली के ज्योतिषी शाया परेली ने इन्हें देखा। यह १८७७ की बात है। जब उसने मंगल पर नहरों के

अस्तित्व की आश्चर्यजनक सूचना दी तो लोगों में खलबली मच गई। इनमें कुछ नहरें इकहरी और कुछ दुहरी दिखलाई पड़ती हैं। ये कुछ इस ढंग से बनी हुई हैं कि केवल प्रकृति की रचना नहीं जान पड़ती। इतनी सुव्यवस्था से प्रकृति अपना काम नहीं करती। जहाँ ये नहरें परस्पर एक-दूसरे को काटती हैं, वहाँ मैले हरे गोलाकार धब्बे पाये जाते हैं। ये रेगिस्तान की उपजाऊ भूमि-से लगते हैं। ये नहरे, यदि ये वास्तव में नहरे ही हैं, १०० फ़ुट चौड़ी और कभी-कभी एक हज़ार मील लम्बी हैं।

मरुभूमि गाढ़े भूरे रंग की है। ग्रीष्मऋतु के आते ही ध्रुवों का बर्फ़ पिघलने लगता है और पानी नहरों में होकर बह चलता है। उस समय मरुभूमि का रूप ही बदल जाता है। नहरों के दोनों ओर वनस्पतियाँ या फ़सले उग आती हैं। इनके कारण नहरों के किनारे हरे या श्याम दिखलाई पड़ते हैं। दूरदर्शक में इन किनारों को रंग बदलते हुए देख लिया जाता है। कुछ महीने बाद रेखाओं का रंग फिर पुराना-जैसा हो जाता है।

इन नहरों के सम्बन्ध में आज तक मतभेद चला आता है। लॉवेल ने कहा है, मंगल पर ४०० नहरों का जाल बिछा हुआ है। उसने उनके चित्र उपस्थित किये। दूसरे वैज्ञानिक बरनार्ड ने कहा—नहीं, कोई भी नहर नहीं है। मुझे स्पष्ट, पतली, सीधी रेखा एक भी नहीं मिलती। ये अस्पष्ट, मोटी, भद्दी, टूटी-फूटी रेखायें नहरें हो ही नहीं सकतीं। फ़ोटो लेने से भी वैज्ञानिक किसी एक मत पर नहीं पहुँच पाते क्योंकि फ़ोटो में अधिक विस्तार नहीं आता। सम्भव है, जैसा बरनार्ड कहते हैं, छोटे-छोटे बिन्दु-जैसे चिह्न-मात्र हों, जो दूरी के कारण मिले-मिले, रेखाओं-जैसे, उतर आते हैं। अब वैज्ञानिकों और ज्योतिषियों

की अधिक संख्या यह मानने लगी है कि मंगल की नहरे केवल माया-जाल है। परन्तु फिर प्रश्न यह होता है कि माना, ये पृथक्-पृथक् "कलंक" है परन्तु ये इतने नियमानुसार क्यों बिखरे दिखलाई देते हैं कि उनसे ऐसी नहरों का रूप बन जाता है जिन्हें केवल समझदार मस्तिष्क ही बना सकता है। वास्तव में, इस विषय मे अभी कुछ भी नही कहा जा सकता।

परन्तु नहरों का प्रश्न हमारे सामने एक दूसरे बड़े प्रश्न को ला खड़ा करता है। क्या मंगल पर जीव है? जब पहली बार नहरों की बात चली तो लोगों की कल्पना ने मंगल पर जीवधारियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में अनेक बातों का आविष्कार किया। एक ने कहा—"मंगल पर जल तो है ही नहीं। ध्रुवों पर जो दो-चार इंच बर्फ़ जमी मिलती है, उसके प्रयोग में लाने का इससे बढ़कर कोई तरीक़ा ही नही हो सकता जो मंगल-निवासियों को सूझा है। सचमुच, मंगल में अवश्य कोई बुद्धिमान् जाति रहती है। उसने इस पानी का पूरा सदुपयोग किया जान पड़ता है।" मंगल की इन नहरों के किनारे कही-कहीं पर सफ़ेद दाग़-से दिखलाई पड़ते है। एक ज्योतिषी ने कहा—"ये अवश्य रुई की फ़सलें है।" एक अन्य विद्वान्, मोर्स ने एक अजीब ही सूझ पेश की। कहने लगे—"अमरीका में जिस प्रकार कड़ी धूप या पाले से खेत को बचाने के लिए उस पर काग़ज़ या कपड़ा ढक देते हैं, वही बात मंगल-निवासी भी करते होंगे। डाक्टर लॉवेल इस प्रकार की कल्पनायें भिड़ाने में अग्रगण्य हैं। उन्होंने मंगल और उसके निवासियों के सम्बन्ध में एक पूरी पुस्तक ही लिख डाली है। उनका कहना है—"ध्रुवप्रदेश मरुभूमि से नीचे हैं। अतः, नहरों में पानी बिना चढ़ाये चढ़ ही नहीं सकता। अवश्य ही वहाँ पम्प लगे होंगे। कभी-कभी नहरों का रंग

विपरीत दिशा में बदल जाता है, जिससे पता चलता है कि पानी किसी एक निश्चित दिशा में नहीं बहता। इसमें ज़रूर विलक्षण बुद्धिमान् प्राणी का हाथ है।" आगे बढ़कर लेखक कहते हैं—"धीरे-धीरे मंगल समुद्र-रहित हो गया। बड़े-बड़े हरे मैदान मरुभूमि में परिणत होने लगे। इस प्रकार जब चन्द्रमा का जीवन समाप्त होता दिखलाई दिया तो वहाँ के निवासियों ने विलक्षण बुद्धिबल और कौशल का परिचय दिया। समय पाकर हमारी पृथ्वी भी समुद्ररहित हो जायगी। तब मनुष्य को अवश्य कुछ न कुछ बड़ा आविष्कार करना होगा जिससे, चाहे जिस प्रकार हो, जीवन रह सके। मंगल पर पहाड़ न होने और धरातल के सपाट होने के कारण मंगल-निवासियों की युक्ति ने अद्भुत सफलता से काम किया है . . .।" परन्तु कौन जानता है? सम्भव है, भविष्य में कुछ निश्चय हो। पड़ोसी हैं, हमारे-जैसे सुख-दुख सहनेवाले प्राणी पड़ोस के ग्रह मे बसे हुए हैं, इस बात से हमें संतोष अवश्य होता है। सम्भव है, इसी मानसिक परितृप्ति के लिए मनुष्य का मन मंगल पर जीवधारियो के अस्तित्व की बात करता नही अघाता।

५—अवान्तर ग्रह

बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि तो हमारे जाने-पहचाने-से जान पड़ते हैं—कम से कम इनका नाम परिचित है—परन्तु इस 'अवान्तर ग्रह' के सम्बन्ध में हमारा परिचय इतना भी नहीं। यहाँ प्रारम्भ में ही यह बता देना ठीक होगा कि अवान्तर ग्रह अनेक हैं। ये बहुत-से छोटे ग्रह हैं जो मंगल और बृहस्पति के बीच में पड़ते हैं। लगभग एक सहस्र अवान्तर ग्रहों का पता लग चुका है।

यदि सब ग्रहों की कक्षाओं का एक चित्र बनाया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जितना अन्तर मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं में है, उतना किन्हीं दो ग्रहों की कक्षाओं मे नहीं। इससे कुछ लोगों ने यह कल्पना की कि सम्भव है बीच में कोई ग्रह हो जो छोटा होने के कारण हमे दिखलाई नही पड़ता। इस कल्पना से प्रोत्साहन मिलने पर एक ज्योतिषी ने ग्रहों की वास्तविक दूरी का सम्बन्ध देखना शुरू किया। ग्रहों की सापेक्षिक दूरी निकालकर उसने एक नियम ही बना डाला। उसका कहना था—"यदि हम ०,३,६,१२,२४ इत्यादि संख्याओं मे, जिनमें पहली दो संख्यायें ० और ३ है और शेष ३ गुना करते जायँ और उसमें ४ जोड़ते रहें, तो ग्रहों की सापेक्षिक दूरी निकल आयेगी।" इस प्रकार उसने बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि के लिए क्रमशः ४,७,१०, १६,५२, १०० की संख्यायें निश्चित की। ग्रहों की वास्तविक दूरी की संख्यायें इन संख्याओ के बहुत क़रीब पड़ती है। इस प्रकार सारिणी उपस्थित करते समय १६ और ५२ के बीच मे एक संख्या और आई थी। यह थी २८। परन्तु मंगल और बृहस्पति के बीच में कोई ग्रह नही था। यदि नियम ठीक है तो गणना-द्वारा निश्चित स्थान के आस-पास ही किसी मध्यवर्ती ग्रह की कक्षा होनी चाहिए। यह नियम 'बोडे का नियम' कहलाया जाता है। १७७८ में जर्मनी के एक प्रोफ़ेसर ने इसका आविष्कार किया था।

८ वर्ष पश्चात् जर्मनी की गोथा वेधशाला के अध्यक्ष ने यह निश्चय किया कि इस मध्यवर्ती नवीन ग्रह की खोज की जाय। अतः, उसने २४ सदस्यों की एक परिषद् स्थापित की और राशिमंडल को २४ भागों में बाँटा। प्रत्येक सदस्य को एक भाग मिला। इस भाग में उसे छिपे हुए ग्रह की खोज करनी थी। इस परिषद् का नाम "आकाश की

खुफ़िया" पड़ गया। इसमे सन्देह नहीं कि लोग इस काम को ज्योतिषियों के सनकपन की सूझ समझते थे।

वर्ष बीत गया। किसी के हाथ कुछ नही लगा। परन्तु जनवरी १,१८०१ की रात को सिसली द्वीप के तरुण ज्योतिषी पियाजी ने इस रिक्त-स्थान में एक ग्रह देख लिया। सिसली की ग्रामदेवी के नाम पर उसने इस ग्रह का नाम सीरिस रक्खा। यह ग्रह आकार में इतना छोटा था, कि ज्योतिषी आश्चर्य में पड़ गये। परन्तु वर्ष भर बाद जब इसी रिक्तस्थान पर एक दूसरे ग्रह का पता चला तो उनके आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा। १८०४ में तीसरा ग्रह मिला। १८०७ में चौथा। इस प्रकार १८४५ तक मंगल और बृहस्पति के बीच के रिक्त-स्थान में लगभग एक सहस्र ग्रहों का पता लग चुका था।

ये ग्रह दो ग्रहों के बीच में है। इसलिए इन्हें अवान्तर ग्रह का सामूहिक नाम देना ही अच्छा होगा। वास्तव में इन्हें "क्षुद्र ग्रह" कहना चाहिए।

ये ग्रह इतने छोटे है कि इनके व्यास का नापना कठिन है। जिस ग्रह का आविष्कार सबसे पहले हुआ था, वही सबसे बड़ा है। उसका व्यास ४८० मील है। १०० मील के अधिक व्यासवाले ग्रहों की संख्या पन्द्रह-सोलह से अधिक नहीं होगी। अधिकांश ग्रह दस-बीस मील के हैं। कुछ इससे भी छोटे हैं। एक का व्यास तीन मील ही है। क्या यह असम्भव है कि इससे भी छोटा कोई ग्रह दिखलाई पड़ जाय। परन्तु यह 'ग्रह' शब्द की अच्छी बिडम्बना रही। कहाँ बृहस्पति, कहाँ तीन मील व्यासवाला ऐलिण्डा ग्रह।

इन छोटे-छोटे बहुसंख्यक ग्रहों की पहचान रखना भी बड़ा कठिन है। कभी कोई विशेष ग्रह दिखलाई पड़ता है परन्तु कुछ ही दिनों

बाद खो जाता है। भी-कभी ऐसा होता है कि ज्योतिषियों ने किसी नवीन ग्रह की सूचना दी परन्तु वह निकला पुराना पहचाना हुआ ग्रह। इतने बहुत-से ग्रहों का नामकरण करना भी कोई सरल बात नहीं। इस कठिन काम को संसार भर के ज्योतिषियों ने बर्लिन (जर्मनी) की रेखेन इन्स्टिट्यूट को सौंप दिया है। इसका 'अध्यग्रह प्रत्येक ग्रह के लिए एक स्थायी नम्बर डाल देता है। फिर वह आविष्कारक को लिखता है—"तुम इसका क्या नाम रक्खोगे ?" आविष्कारक कोई नाम बतलाता है। ग्रह को यह नाम दे दिया जाता है। परन्तु वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नाम कुछ भी सहायता नही करता। जहाँ किसी नये अवान्तर ग्रह की सूचना मिली कि संख्याओंवाले रजिस्टर को निकालना पड़ा। पहले यह निश्चित कर लेना होता है कि नया ग्रह वास्तव में कोई पुराना, भूला-भटका ग्रह तो नही है। ज्योतिषी इतने ग्रहों का नाम रखते-रखते थक गये है। पहले देवी-देवताओं के नाम पर नामकरण किया जाता है। बहुत दिन हुए सारे देवी-देवता समाप्त हो गये। मित्रों, नगरों, बाग़-बाग़ीचों और प्रिय वस्तुओं के नाम की बारी आई। किसी ने अपने कुत्ते के प्यारे नाम पर ग्रह का नाम रक्खा, किसी ने अपनी स्त्री के! कहाँ हमारे पूर्वज ५-७ ग्रह जानते थे, कहाँ ग्रहों की यह छीछालेदर हो रही है।

अवान्तर ग्रहों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि जिन गैस-कणों के बँध जाने से एक अच्छा-सा ग्रह बँध पाता, वे किसी प्रकार बँध नहीं पाये। इस प्रकार अनेक पिंड हो गये। परन्तु अधिक प्रचलित मत यह है कि ये ग्रह किसी बड़े ग्रह के विस्फोट से बने हैं। यह ग्रह कहाँ स्थित था; कब, कैसे और कितनी ज़ोर से फूटा, इन सब बातों का निश्चय नहीं हो पाया है।

सच तो यह है कि एक नन्हें से अवान्तर ग्रह—एरॉस—को छोड़कर शेष हमारे लिए अधिक मूल्यवान् नही। एरॉस बहुत बड़ा नहीं है, उसका व्यास केवल १५ मील है। परन्तु उसकी विशेषता यह है कि वह पृथ्वी के इतने निकट आ जाता है जितना—चन्द्रमा को छोड़कर—कोई भी आकाशीय पिंड नही आता। अतः, सम्भव है कि यह कभी अनुकूल परिस्थितियों में दिखलाई पड़े और इसके अध्ययन से अवान्तर ग्रहों की उत्पत्ति का रहस्य खुले।

६—बृहस्पति

बृहस्पति सौरपरिवार का सबसे बड़ा ग्रह है। महाकाश में मंगल और अवान्तर ग्रहों के बाद इसकी स्थिति है। मंगल और बृहस्पति के बीच में लगभग तीस करोड़ मील की दूरी है। बृहस्पति सूर्य का ज्येष्ठ पुत्र है। उसका व्यास पृथ्वी की अपेक्षा ग्यारह गुना (८६,७२० मील) है। आयतन में यह ग्रह पृथ्वी से १,३०० गुना बड़ा है। सूर्य और बृहस्पति के बीच में, ४८,३२,००,००० मील का अन्तर है।

आकाश का कोई तारा चमक मे इस ग्रह की स्पर्धा नहीं कर सकता। ग्रहों में शुक्र और मंगल को छोड़कर इसकी चमक सबसे अधिक है। मंगल रक्तवर्ण है, बृहस्पति कुछ पीले रंग का है; इससे इसके पहचानने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। शुक्र सदा सूर्य के पास रहता है परन्तु बृहस्पति के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। प्रत्येक तेरहवें महीने यह संध्या के समय पूर्व दिशा में उदय होता है और रात भर चमक-कर प्रातःकाल पश्चिम में डूब जाता है।

सूर्य की परिक्रमा करने में बृहस्पति को ११·८६ वर्ष लगते हैं। परन्तु अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह ग्रह अपनी धुरी पर कम समय में घूम

जाता है। इस कार्य में इसे १० घंटे लगते हैं। दूरबीन से देखने पर एक अद्भुत बात दिखलाई देती है। इस ग्रह के भिन्न-भिन्न देश भिन्न-भिन्न वेगों से अपनी धुरी पर घूमते है। इससे पहले यह समझा जाता था कि बृहस्पति का अधिकांश भाग अवश्य गैस के रूप में होगा; घूमने के कारण इस गैस के कई पिंड हो गये होंगे और वे पृथक्-पृथक् गति से अपनी-अपनी धुरियों पर घूम रहे होंगे। परन्तु अब वैज्ञानिकों का कहना है कि बृहस्पति के धरातल को हम देख ही नही रहे हैं; जो हमें दिखाई पड़ते हैं वे घनी वाष्पों के बादल है जो इस ग्रह को घेरे हुए है।

दूरदर्शक में देखने से बृहस्पति का सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। वह कई प्रकार के रंगों से रँगा हुआ दीख पड़ता है। उस पर लाल, भूरे और हरे रंग की धारियाँ दिखलाई देती हैं। हरी धारियाँ अनुपात में बहुत कम है; अधिकांश धारियाँ लाल या भूरी है। कहीं इन धारियों का रंग अधिक गहरा है, कही कम। ग्रह के बीच में एक चमकीली धारी है जिसका रंग कही पीला है, कहीं ईंट-जैसा लाल। इस मध्यवर्त्ती धारी के ऊपर-नीचे लाल-भूरे और नीले-भूरे रंग की धारियाँ मिलती हैं। उत्तर और दक्षिण में अन्य कितनी धारियाँ है। ये धारियाँ स्थायी नहीं हैं। प्रत्येक वर्ष इनके रूप, स्थिति, चौड़ाई, गति—सभी बातों में अन्तर देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे धब्बे और चिह्न भी दिखाई देते हैं। जिन्हें बदलते हुए सप्ताह-दो सप्ताह से अधिक समय नहीं लगता।

परन्तु कुछ चिह्न ऐसे अवश्य हैं जो कुछ वर्षों तक एक-जैसे बने रहते हैं। १८७८ में एक "बड़ा रक्त-चिह्न" पहली बार दिखलाई दिया था। गणना से पता लगा कि यह ३०,००० मील लम्बा और ७,००० मील चौड़ा है। उस समय यह लाल ईंट के रंग का जान पड़ता था।

यह चिह्न अब भी उसी स्थान पर दिखलाई पड़ता है, यद्यपि अब यह कुछ फीका पड़ गया है।

अब तक इस ग्रह का जो अध्ययन हुआ है इसके आधार पर इसके धरातल के सम्बन्ध में कोई भी निश्चित मत देना असम्भव है। पता चलता है कि इस ग्रह का तापक्रम १४०° है। इससे इस ग्रह के गैसीय अथवा द्रवित अवस्था मे होने की कोई बात ही नही उठती। विचार यह किया जाता है कि यह ग्रह अन्य ग्रहों की तरह ही ठोस है परन्तु इसके ऊपर एक बहुत घने और बहुत बड़े वायुमंडल का घेरा है। कुछ लोग यह भी अनुमान लगाते है कि इस ग्रह का धरातल हिम से ढका हुआ है और जो बादल इस पर हमें दिखलाई देते है वे वास्तव में द्रवीभूत गैसों से बने है।

बृहस्पति के उपग्रहों की संख्या नौ है। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ हमारी पृथ्वी के साथ एक ही चन्द्रमा लगा है, वहाँ इस ग्रह को नौ-नौ चन्द्रमा प्रकाशित करते है। इन उपग्रहों को हम बृहस्पति के पुत्र अथवा सूर्य के पौत्र भी कह सकते है।

बृहस्पति की तेज़ चमक के कारण इन सब ग्रहों को आँख से देखना कठिन है। परन्तु कुछ तेज़ आँखवालों ने दो ग्रह कभी-कभी देख लिये हैं।

बहुत दिनों बाद जब अधिक अच्छे दूरदर्शक बन गये तो एक नये उपग्रह का आविष्कार हुआ। शेष चार ग्रहों का पता उस समय लगा जब दूरदर्शक के सहारे फ़ोटो लेने की रीति की खोज हो गई। ये चारों इतनी दूर हैं कि फ़ोटो भी जल्दी नहीं उतरता। प्रकाश को इकट्ठा करने में बड़ा समय लग जाता है, तब कहीं छोटे बिन्दुओं के रूप में इन उपग्रहों के दर्शन होते हैं। सम्भव है, और भी उपग्रह हैं जिनका पता हमारे दूरदर्शक अभी तक नहीं लगा सके हैं।

७—शनि

पुराने ज्योतिषियो को जितने ग्रहो का पता था उनमे सबसे अन्तिम शनि का ग्रह है। यह बृहस्पति के बाद और उससे लगभग दुगनी दूरी पर स्थित है। कोरी आँख से देखने पर शनि भद्दे, पीले रंग का जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसकी चाल भी सब ग्रहों की अपेक्षा सुस्त है। यह २९।। वर्षा में सूर्य का चक्कर लगा पाता है। कदाचित् इसी से ही हमारे पूर्वजों ने इसका नाम शनैश्चर रक्खा था। "शनैश्चर" का अर्थ है "धीरे-धीरे चलनेवाला।" उन्होंने इसके प्रभाव को अमागलिक माना है। अत जिस मनुष्य को रोग, शोक, धन-हानि, कुटुम्ब-हानि आदि दुर्भाग्य-पूर्ण घटनाओ का कष्ट उठाना पड़े उसके लिए कहते है—"इस पर शनि की छाया है" अथवा इसे शनि का कष्ट है।

शुक्र, मंगल और बृहस्पति जैसे प्रकाशमान ग्रहों के बीच मे इस मटमैले, पाण्डुवर्ण ग्रह को खोज निकालना सरल नही है। परन्तु यदि किसी पचाङ्ग की सहायता ली जाय, तो फिर असफलता नही होगी।

शनि बृहस्पति से कुछ ही छोटा है। उसका व्यास ७१,५०० मील है। सूर्य से इसकी दूरी ८८,५९,००,००० मील है। यह सब ग्रहों से अधिक चपटा भी है; इसके प्रत्येक ध्रुव ४,००० मील दबे हुए हैं।

यह ग्रह अपनी धुरी तक कितने समय में घूम आता है, इस सम्बन्ध मे निश्चित होकर कुछ कहा नहीं जा सकता। इस पर ऐसे कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ते, जिनके हिसाब से इसके परिभ्रमण-काल का पता लगाया जाय। परन्तु कुछ विशेष अनुभवों के आधार पर कहा जा

सकता है कि यह अपनी धुरी पर घूमने में १० घंटे से कुछ ऊपर समय लेता है।

शनि पर भी बृहस्पति के समान धारियाँ बनी दिखलाई देती है यद्यपि उनकी रूप-रेखा उतनी स्पष्ट नहीं। ये धारियाँ भी रंगीन हैं। मध्यवर्ती रेखाओ का रंग चमकीला पीला है; ध्रुवप्रदेशों की धारियों के रंग हरे है। ज्योतिषियो के विचार में ये धारियाँ भी घनी वाष्प के बादल से बनी हुई हैं। बृहस्पति की धारियों के सम्बन्ध मे भी उनका यही अनुमान है । वास्तव मे, ये धारियाँ क्या है, यह समस्या अभी तक भली भाँति सुलझी नही है। सम्भव है, निकट भविष्य मे यह सुलझ जाय।

यदि हम इस ग्रह को दूरदर्शक से देखें तो बात ही और हो जाती है। तब यह अत्यन्त मनोहर दिखलाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि बीच में कुछ चपटा-सा एक गोला है और इसे चारों ओर से एक सुन्दर, धारीदार, चौड़ी पट्टी घेरे हुए है। ऐसी पट्टी आकाश भर के सभी पिडो को खोज डालने पर भी हाथ न लगेगी। इसे हम 'वलय' कहेंगे।

इस वलय ने शताब्दियों तक ज्योतिषियों को चक्कर मे डाल रक्खा था। सबसे पहले गैलीलियो ने इस वलय को देखा परन्तु तब वह कुछ इस रूप में दिखाई पड़ा कि उसने समझा, ग्रह अकेला नही है, तिहरा है। कुछ वर्षों बाद देखने पर एक ही ग्रह दीख पड़ा। गैलीलियो को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला, "क्या इस शैतान ने अपने लड़कों को ही खा डाला ?" गैलीलियो मर गया, किन्तु वह इस वलय का रहस्य नही पा सका। इसके पचास वर्ष बाद हालैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी हायगेन्स ने वलय के रहस्य का उद्घाटन किया—'यह पतले

धम्रकेतु—पृष्ठ ७३

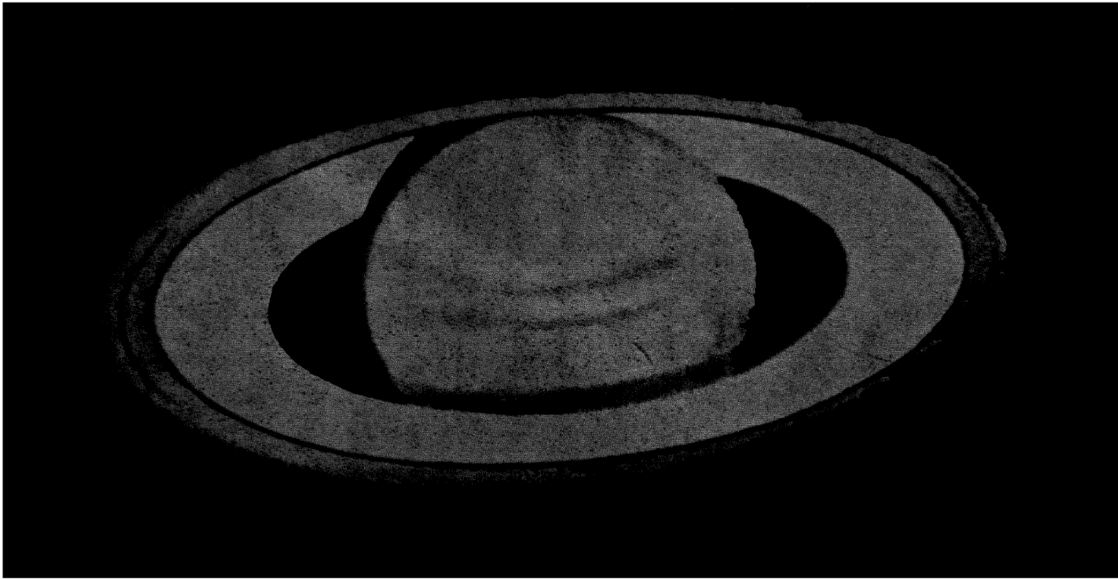

शनिग्रह और उसका वलय—पृष्ठ ६७

वलय से घिरा हुआ है जो इसे कही नहीं छूता ।' बीस वर्ष बाद फ्रांस के ज्योतिषी कैसनी ने यह सिद्ध किया कि वास्तव मे दो वलय है। ७५ वर्ष बाद अमरीका के बॉण्ड ने तीन वलयो की उपस्थिति सिद्ध की।

वास्तव मे शनि वलय की तीन कुण्डलियो से घिरा हुआ है। वलय की मोटाई १० मील है। कुण्डलियों ने इसके तीन भाग कर दिये है। इन कुण्डलियो मे लिपटे हुए शनि का वर्णन इस प्रकार हो सकता है—जैसे कोई तीन पतले छल्ले उँगली मे डालकर उन्हे घुमा रहा हो और तीनों छल्ले एक ही केन्द्र-बिदु के चारो ओर परस्पर सटकर घूम रहे हों। ज्योतिषियों का विचार है कि इन वलयों का पदार्थ न ठोस है, न द्रव। प्रत्येक वलय में करोडों की संख्या मे छोटे-छोटे कण हैं जो इस ग्रह की इस प्रकार परिक्रमा करते है कि अन्त मे एक चक्र का रूप बन जाता है। ये चक्र क्यों, कब, कैसे बने, इन प्रश्नों का उत्तर अब भी रहस्य के गर्भ मे छिपा हुआ है।

परन्तु शनि का आश्चर्य यही समाप्त नहीं हो जाता। शनि के दस उपग्रह हैं अर्थात् हमारी पृथ्वी को घेरकर एक चन्द्रमा घूमता है। शनि को घेरकर दस चन्द्रमा घूम रहे है जिनमे प्रत्येक की उसी प्रकार की कलायें होती होंगी जिस प्रकार हमारे चन्द्रमा की। जब हमें शनि का वलय पूरा दिखलाई देता है तो ये उपग्रह ऐसे लगते हैं जैसे पतले धागे मे मोती पिरोये गये हो। जब वलय हमें दिखलाई नहीं देता तो हम इन उपग्रहों को अधिक सुगमता से देख सकते है। और भी आश्चर्य की बात यह है कि जहाँ और सब उपग्रह अपने-अपने ग्रह के चारों ओर एक विशेष दिशा में घूमते हैं, वहाँ शनि के उपग्रह उनकी उलटी दिशा में चक्कर लगाते हैं। शायद शनि का भाग्य ही उलटा है।

८—वरुण

कुछ समय हुआ, ज्योतिषी समझते थे कि शनि सौरमंडल के प्रवेश-द्वार का प्रहरी है। परन्तु आधुनिक काल में वरुण, उरण और कुबेर नाम के ग्रहों की खोज से उनकी यह विचारधारा ग़लत सिद्ध हुई है। अब सौरमंडल के प्रहरी का काम शनि के हाथ से लेकर कुबेर को सौप दिया गया है। कौन जानता है, कल किसी नये ग्रह का आविष्कार हो जाय और कुबेर को भी छुट्टी मिले।

वरुण पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से १५ गुना अधिक दूर है। औसत दर्जे पर सूर्य से उसका अन्तर १,७८,२३,००,००० मील है। सूर्य की परिक्रमा करने मे इसे ८४ वर्ष लगते है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से चौगुना—लगभग ३२,४०० मील—है और यह आयतन मे उसकी अपेक्षा ६४ गुना बड़ा है।

दूरबीन से देखने पर वरुण हरे रग का दिखलाई पडता है। यह इतनी दूर है कि इसमे न कलाये दिखलाई पडती हे, न यह पता चलता है कि इसका धरातल कैसा है। परन्तु अनुमान किया जाता है कि इसकी दशा बृहस्पति और शनि जैसी होगी क्योंकि यह भी बृहस्पति के समान पृथ्वी से बहुत बड़ा है और इसका घनत्व भी लगभग उतना ही है जितना बृहस्पति का। वरुण के प्रकाश-चित्र के अध्ययन से यह पता लगता है कि इस पर गहरा वायुमंडल मौजूद है। यह भी पता लगा लिया गया है कि यह ग्रह अपनी धुरी पर पौने ग्यारह घंटे में घूम जाता है।

वरुण के ४ उपग्रहों का पता चला है। इनमें से जो सबसे बड़ा है, वह हमारे चन्द्रमा का आधा है।

९—उरण

उरण का व्यास ३१,००० मील है। सूर्य से जितनी दूर हमारी पृथ्वी है उससे ३० गुना अधिक दूर यह ग्रह है। औसत निकालने पर अन्तर २,७९,२७,००,००० मील बैठता है। सूर्य की एक परिक्रमा में उसे १६,४·७८ वर्ष लगते हैं। बडे दूरदर्शको मे यह हरे रग का दिखलाई पड़ता है। वरुण से यह ग्रह नाप मे ज़रा-सा ही छोटा है।

इससे अधिक बातों का पता नहीं चलता।

१०—कुबेर

इस ग्रह के सम्बन्ध में अभी अधिक पता नहीं लगा है। हाँ, यह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से लगभग ४५ गुनी दूरी पर है और कदाचित् सूर्य की प्रदक्षिणा मे इसे ३०० से भी अधिक वर्ष लगते है। इसका ठीक-ठीक व्यास नही मालूम। अनुमान किया जाता है, यह ग्रह मंगल से बडा होगा, शायद हमारी पृथ्वी के बराबर हो।

यह हुई नवीनतम ग्रह कुबेर की बात।

परन्तु क्या कुबेर सौर परिवार का अन्तिम सदस्य है?

कुछ निश्चित नही कहा जा सकता।

कुछ ज्योतिषी कहते है कि ग्रहो के तीन समूह अवश्य हैं। उनके अनुसार पहले समूह मे बुध, शुक्र और पृथ्वी के ग्रह हैं; दूसरे समूह में मंगल, अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, वरुण और उरण। उनका कहना है कि तीसरे समूह में भी कई ग्रह होगे जिनमे सबसे पहला कुबेर है।

उल्कायें और पुच्छलतारे

पिछले परिच्छेद मे हमने सूर्य के कुटुम्ब के सम्बन्ध मे लिखा है। वहाँ हमने कुलपति सूर्य के पुत्रो और पौत्रो (ग्रहो और उपग्रहो) पर विचार किया है। परन्तु सूर्य का कुटुम्ब इन्ही पर समाप्त नही हो जाता। उसमे दो प्रकार के सदस्य और आते है—उल्काये और पुच्छलतारे। ये सदस्य इतने महत्त्वपूर्ण नही है जितने पिछले सदस्य थे परन्तु इनकी संख्या कहीं अधिक है और ये उनसे कही अधिक विचित्र है।

यों तो उल्कायें और पुच्छलतारे सौर-परिवार के ही सदस्य है परन्तु साधारणत. हम ऐसा नही समझते। ये परिवार के लोगो की तरह एक ही घर मे रहते, उठते, बैठते हमे दिखलाई नही पडते। ये मेहमानों की तरह आते है और कुछ दिन सौर-परिवार मे रहकर चले जाते है।

परन्तु बात ऐसी नही है। यदि हम महाभारत के सजय की तरह दिव्यचक्षु हो जाते और भूत-भविष्य को ही नही अनन्त विस्तार को भी देख सकते तो हमें यह पता लग जाता कि वास्तव मे सूर्य के कुटुम्बी आकाश मे अनन्त दूरी तक फैले है और वे आपस मे काफ़ी मिल-जुलकर रहते हैं। उनका सहसा उदय-अस्त हो जाना हमे इसलिए सत्य लगता है कि हमारी दृष्टि अनन्त आकाश में बहुत कम दूरी तक जा सकती है और हमारी आयु इतनी थोड़ी है कि हम इन कुटुम्ब के आदमियों को बहुत बार मिलता-जुलता नहीं देख सकते। इनमे पुच्छलतारों का तो स्वभाव भी ग्रहों की तरह है; वे भी ग्रहों की तरह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इससे हम इन्हे ग्रहों की भाँति ही सूर्य का पुत्र कह सकते हैं। हाँ, उल्काओं के जन्म और स्वभाव के सम्बन्ध में विद्वान्

लोग एक-मत नही है। कुछ कहते है कि ये सूर्य के ही छोटे-छोटे टुकड़े हैं जो सदैव से उसके साथ है; कुछ कहते हैं कि वे मूलतः सूर्य के कुटुम्बी नही है। सूर्य जब किसी नीहारिका मे से गुजर रहा था तो इन्हे अपने साथ ले आया था। जो हो, अब तो इतने दिन से रहते-रहते उल्कायें भी सूर्य के कुटुम्ब मे मिल गई है।

१--पुच्छलतारे

'पुच्छलतारे' नाम से एक विशेष प्रकार के तारे का बोध होता है। यह ऐसा तारा है जिसके पूँछ लगी होती है। इसी पूँछ के कारण यह इतना विचित्र जान पडता है। सस्कृत मे 'पुच्छलतारे' को "धूम्रकेतु" कहते है जिसके अर्थ है "धुएँ की ध्वजा।" प्राचीनों ने इस धुएँ की ध्वजा को ससार के लिए अमगल का चिह्न माना है और उनकी कथाओं और काव्यो मे इसका सम्बन्ध अनेक दुर्घटनाओं से जोड़ा गया है।

पुच्छलतारे के सम्बन्ध मे दो बाते ऐसी है जो उसे हमारे लिए आश्चर्य और भय का विषय बना देती है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारों को हम आकाश में सदैव देखते रहते हैं। उनका उदय-अस्त निश्चित है, उनका स्थान निश्चित है और हम उनसे इतने परिचित है कि उनके विषय मे हमें तनिक भी आश्चर्य या भय नही। परन्तु पुच्छलतारे के सम्बन्ध में बात और है। एक तो वह न जाने कब उदय हो जाय ! उसका आना देखनेवालों को नितान्त आकस्मिक जान पड़ता है। फिर इस दीर्घकाय अभ्यागत की शकल-सूरत भी कुछ अजीब है। एक बड़ा-सा प्रकाशबिन्दु एक बड़ी-सी पूँछ को घसीटता हुआ चला आता है। अकसर यह पूँछ इतनी बढ़ जाती है कि मन अनेक दुश्चिन्तायें करने लगता है। सभ्य से सभ्य मनुष्य भी किसी आपत्ति की भावना से डरने लगते है। उस पर

यह लम्बी पूँछ कभी ध्वजा का रूप धारण कर लेती है, कभी मूठदार तलवार का, कभी दो-तीन पूँछें बन जाती हैं, कभी पूँछ सहसा कही बीच में से टूटकर दो टुकड़े हो जाती है। इन विचित्रताओं के कारण ही पुच्छलतारे के उदय होने को मनुष्य ने सदा से भयसूचक और अशुभ माना है।

पुराने समय के लोगों का विश्वास था कि पुच्छलतारे के उदय होने पर कोई चक्रवर्ती राजा मृत्यु को प्राप्त होगा, दुर्भिक्ष पड़ेगा, महामारी आयगी, राज्य में उपद्रव होगा, कोई महायुद्ध होगा, जन-धन का नाश होगा, रोग-शोक बढेंगे। इसी तरह की अनेक अनिष्ट कल्पनाये की जाती थी। हमारे भारतवर्ष में ही नही प्रत्येक देश मे पुच्छलतारे से मनुष्य ने भय का सम्बन्ध जोड़ा था।

पुच्छलतारे जब दिखलाई पड़ते थे तो किसी देश के लोग उन्हें देवताओं का अभिशाप समझते थे और उनको प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करते या बलि देते थे। चीन के ग्राम-निवासी अब भी आतिशबाज़ी छोड़ते है जिससे पुच्छलतारा डरकर भाग जाय। बाद में घटनेवाली अनेक दुर्घटनाओं का सम्बन्ध पुच्छलतारे के उदय से जोड़ लेना तो एक साधारण बात है।

इसी भय के कारण प्राचीनों ने ज्योतिष के विचार से पुच्छलतारे का अध्ययन कभी नहीं किया। चीन और जापान ही ऐसे देश हैं जिनकी प्राचीन पुस्तकों में पुच्छलतारों के उदय की तिथियों और उनके मार्ग का ठीक-ठीक उल्लेख मिलता है। इन उल्लेखों ने धूम्रकेतु-सम्बन्धी अनेक खोजों में सहायता दी है।

पुच्छलतारे के तीन भाग होते हैं। बीच में एक चमकदार केन्द्र होता है जिसे 'नाभि' कहते हें। यह तारे की तरह दिखलाई देता है। यह

आवश्यक नही है कि नाभि हो ही। किसी किसी पुच्छलतारे मे नाभि नहीं होती। किसी मे दो या अधिक नाभियाँ होती है। नाभि को घेरे हुए 'सिर' होता है। यह सब पुच्छल तारों मे समान रूप से होता है। यह धुनी हुई रुई के गाले की तरह या अस्पष्ट, धुयें के गहरे दूधिया रग के बादल की तरह दीख पड़ता है। साधारणत: सिर गोल होता है। तीसरा भाग "पूँछ" है। यह पुच्छलतारे का सबसे विचित्र भाग है। पूँछ झाड़ू की तरह लगती है और इसकी स्थिति हमेशा सूर्य से विपरीत दिशा मे होती है। पूँछ एक ओर मुड़ी रहती है। यदि यह पूँछ सीधी फैला दी जाये तो १५ करोड मील तक जा सकती है।

पुच्छलतारे का आयतन बहुत बडा होता है। उसका व्यास ३०,००० मील से लेकर १,५०,००० मील तक होता है। १०,००,००० मील व्यास के पुच्छलतारे भी देखने मे आ जाते है। परन्तु नाभि का व्यास ५०० मील से अधिक कभी नही बढता। पुच्छलतारे की सबसे बडी चीज पूँछ है जिसकी लम्बाई साधारणत: ५०,००,००० से लेकर १०,००,००,००० मील तक होती है।

परन्तु पुच्छलतारे का आयतन चाहे जितना अधिक हो, वह जिस वस्तु का बना होता है वह मात्रा में बहुत थोड़ी होती है। जब पुच्छलतारा किसी ग्रह के पास से निकलता है तो गुरुत्वाकर्षण के कारण वह अपना रास्ता छोड़कर उसके समीप खिच आता है। इससे यह जान पड़ता है कि उसका भार अवश्य ही बहुत कम होगा। भार कम होने का अर्थ है कि जिन तत्त्वों का वह बना होगा उनकी मात्रा बहुत कम होगी।

ज्योतिष-विशारदों का कहना है कि पुच्छलतारे की नाभि ठोस नही होती। वह धूल-के-जैसे कणों और गैस की बनी होती है परन्तु

उसमें कुछ साधारण पत्थर या उससे बड़े टुकड़े भी होते है। उसका सिर इतने हलके पदार्थ का बना होता है कि उसके पार देखने पर भी तारे उतने ही चमकदार दिखाई देते है जितने पहले दिखाई देते थे। सिर गैस की परत और धूल के अणुओं का बना होता है। पूँछ इसमे भी हलके तत्त्व की बनी होती है। नाभि मे जो गैसीय तत्त्व होता है, वही सूर्य के दबाव के कारण पूँछ का रूप ग्रहण कर लेता है। यह ऐसा ही हुआ जैसे मोटर पीछे से धुआँ छोडता हुआ दौड रहा हो। परन्तु यह धुआँ लगातार छूटता रहता है और शून्य मे जो तत्त्व की हानि होती है उसकी पूर्ति करता रहता है। वैज्ञानिको का कहना है कि पूँछ का घनत्व बिजली के बल्व के भीतरवाले शून्य के घनत्व से भी कम होगा। यही कारण है कि पुच्छलतारो की पूँछ से टकराने पर भी किसी ग्रह को हानि नही पहुँचती। वैज्ञानिको ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी पृथ्वी निश्चय ही दो-एक बार पुच्छलतारो की पूँछ में पड़ गई है परन्तु वह नाम-मात्र को अपने पथ से विचलित नही हुई, न पृथ्वी के ऊपर रहनेवाले प्राणियों को ही इस बात का आभास हुआ।

पुच्छलतारे की पूँछ किस समय किस प्रकार की होगी, इस विषय मे हम ज़रा भी अनुमान नही लगा सकते। उसका रूप शीघ्रता से बदलता रहता है। कभी-कभी पूँछ से बड़ा चादर-जैसा टुकड़ा टूटकर शून्य मे विलीन हो जाता है। कभी पूँछ स्वय दो भागों मे टूट जाती है या फुलझडी की तरह झड़ने लगती है। यह भी देखा गया है कि जब कुछ तारे सूर्य के अधिक पास आ जाते है तो एक पूँछ के स्थान पर उनमे दो-तीन पूँछें निकल आती है।

दूरबीन से देखने पर अनन्त शून्य से आता हुआ पुच्छलतारा किस तरह दीख पड़ता है, यह जानने का कौतूहल होना बुरा नही है। अच्छा,

सुनिए ! पहले तो वह केवल साधारण तारे की तरह प्रकाशबिदु-मात्र दिखलाई देता है। उसकी रूप-रेखा स्पष्ट नही होती। जैसे-जैसे वह निकट आता जाता है, रूप-रेखा अधिक स्पष्ट होती जाती है और उसका सिर अधिक-अधिक छोटा होता जाता है। जैसे-तैसे पुच्छलतारा सूर्य की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी पूँछ लम्बी होती जाती है। वह सूर्य से विपरीत दिशा मे होती है। जब पुच्छलतारा सूर्य से हटने लगता है तो यह पूँछ आगे-आगे चलती है। जैसे-जैसे वह सूर्य से दूर होता जाता है वैसे-वैसे यह पूँछ छोटी होती जाती है और अन्त मे अदृश्य हो जाती है।

पुच्छलतारे के सम्बन्ध मे एक महत्त्व की बात यह है कि वह आकस्मिक ढंग पर उदय होता है। अब यदि हम यह कहे कि पुच्छलतारे के उदय होने का समय उसी तरह निश्चित है जिस तरह सूर्य या चन्द्रमा के उदय होने का तो यह आश्चर्य की बात होगी। परन्तु अनुभवों से जान पड़ता है कि यह बात ठीक है। पुच्छलतारे का उदय होना हमे इसलिए आकस्मिक जान पड़ता है कि उनका निश्चित समय बड़ा लम्बा होता है और मनुष्य का जीवन थोड़ा है। अधिकाश पुच्छलतारे इतना लम्बा चक्कर लेकर घूमते है कि वह हमें कुछ हज़ार वर्षो मे केवल एक ही बार दिखाई देते है। परन्तु कुछ पुच्छलतारे ऐसे भी है जिनका चक्कर इतना बड़ा नही होता और हम उन्हें निश्चित समय पर लौटता हुआ देखते है। ऐसा ही एक पुच्छलतारा "हैली केतु" है। इस चमकदार पुच्छलतारे को पहली बार इँगलैड के वैज्ञानिक एडमण्ड हक्सले ने १६८२ मे देखा था और न्यूटन के गति-सम्बन्धी नियमो के अनुसार उसमें गणित-द्वारा यह सिद्ध किया था कि उस तारे का मार्ग क्या है। उसने पुराने उल्लेखों

के सहारे पिछले पुच्छलतारों का अध्ययन किया तो उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इस तारे का चक्कर वही था जो १५३१ और १६०७ मे उदय होनेवाले पुच्छलतारों का । इससे उसने यह नतीजा निकाला कि ये पृथक्-पृथक् तीन पुच्छलतारे नही है वरन् वास्तव में एक ही पुच्छलतारा है जो निश्चित समय पर बार-बार लौटकर आता है। यह तारा प्रत्येक ७४ वर्ष मे एक चक्कर पूरा कर लेता है और इसी से प्रत्येक ७५ वे वर्ष हमे दिखलाई देता है। जब हक्सले इस सिद्धान्त पर पहुॅच गया तो उसने भविष्यवाणी की कि "हैलीकेतु" ७५ वर्ष बाद १७५८ मे फिर दिखाई देगा। ऐसा ही हुआ। यद्यपि हक्सले स्वयं अपने वचन की सच्चाई देखने के लिए जीवित नही रहा परन्तु उसकी भविष्यवाणी ठीक निकली। तब से अब तक यह पुच्छलतारा प्रत्येक ७५ वर्ष के बाद १८३५ और १९१० मे लौट चुका है और अब फिर १९८५ में उदय होनेवाला है।

लगभग ३६ पुच्छलतारे ऐसे है जो "बृहस्पति के परिवार" के नाम से प्रसिद्ध है। वे इस तरह भ्रमण करते है कि उनके चक्कर का एक सिरा सूर्य के पास और दूसरा बृहस्पति के पास रहता है। ये पुच्छलतारे हमे प्रत्येक ३ वर्ष से लेकर ८ वर्ष के अन्तर पर बार-बार दिखलाई पड़ते है। ज्योतिषी इन्हें 'बेला केतु' (Beila s Cornets) कहते है।

यह तो हुई ऐसे पुच्छलतारों की बात जो हमें नंगी आँख से दिखाई दे जाते है। परन्तु यदि हम दूरबीन का सहारा लें तो हमें प्रत्येक दिन कुछ पुच्छलतारे अवश्य दिखलाई पड़ जायँगे। वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारे सौरपरिवार में लगभग १०,००,००० पुच्छलतारे हैं। ये बराबर सूर्य के चारो ओर भ्रमण करते रहते हैं। इनका पथ चपटा होता है और

इनका पृथ्वी से दिखलाई पड़ने का समय भी निश्चित है चाहे वह कितना ही लम्बा हो। वे बार-बार हमारे दृष्टिपथ में लौटकर आते हैं।

यदि हम एक बार इस सत्य का अनुमान कर ले तो फिर हम पुच्छलतारे से कभी नहीं डरे। पुच्छलतारे तो सदा आकाश मे आते-जाते रहते ही है। कोई भी समय ऐसा नहीं जाता जब कुछ पुच्छलतारे आकाश मे नही हों। फिर उनके उदय होने से दुर्घटनाओं का सम्बन्ध जोड़ना कहाँ तक ठीक है। प्रत्येक वर्ष लगभग ५ पुच्छलतारे दूरबीन की सहायता से दिखलाई दे जाते हैं। यदि हम अपनी इस बडी दुनिया की बात ले तो हमें पता चलेगा कि प्रत्येक पल कितनी ही छोटी-बड़ी दुर्घटनायें होती रहती है। इन पुच्छलतारों के उदय होने से उनका सम्बन्ध सरलता से जोड़ा जा सकता है। परन्तु पुच्छलतारे उदय होते या नही ये दुर्घटनाये अथवा इसी प्रकार की अन्य दुर्घटनाये अवश्य घटित होती और चाहे दुर्घटनायें होती या नही होतीं, पुच्छलतारे इसी तरह आते-जाते रहते।

२—उल्कायें

गर्मी की रात मे खुली छत पर सोनेवाले को बहुधा तारे टूटते हुए दिखाई देते है। चाँदनी रात में प्रतिघंटा ४ से ८ तारे तक टूटते दिखाई पड़ेंगे और अमावस की रात मे इनकी संख्या १६ प्रतिघंटा तक बढ़ सकती है।

लोग तारे को टूटता हुआ देखकर बहुत भय करते है। हमारे यहाँ के लोगों का विचार है कि प्रत्येक तारा किसी की आत्मा को सूचित करता है और प्रत्येक तारे के टूटने के साथ कोई-न-काई आत्मा इस संसार के जाल से मुक्त हो जाती है। इसी से जहाँ टूटते हुए तारे को देखा कि

बहुत-से धर्मनिष्ठ पुरुष "राम-राम," "हरे-हरे" आदि पुण्य-मंत्र पढने लगते हैं।

परन्तु यह सब झूठा जंजाल है। तारों के टूटने के सम्बन्ध मे हमे दो भ्रांतियाँ है। एक तो तारे टूटते ही नही। जिस चीज को हम चमकता और फिर धुएँ की रेखा बनाते हुए नष्ट हो जाता देखते है, वह तारा नही है। वह उल्का है। दूसरे, मनुष्य के ससार छोडने मे और उल्का मे कोई दूर का भी सम्बन्ध नही। कदाचित् इस कारण कि लोगो को टूटते हुए तारे अधिक नही दिखाई देते, वे इस प्रकार का सम्बन्ध गढ लेते है। परन्तु उल्काये तो सभी समय सहस्रो की संख्या में उदय-अस्त होती रहती है। दिन-रात भर मे कई लाख उल्काये पृथ्वी के वायु-मडल मे प्रवेश करती है।

ये उल्कायें स्थिरपिंड नहीं है। ये छोटे-छोटे भ्रमणशील पिंड हैं। हमारी पृथ्वी की तुलना में ये पिड रेत के कण से अधिक बडे नही है।

यो ये पिड सदैव ही आकाश मे भ्रमण करते और हमारी दृष्टि मे अदृश्य रहते है। परन्तु जब बाहरी आकाश से ये छोटे पिड हमारे वायुमंडल मे प्रवेश करते हैं तो ये वायु से रगड़ खाकर इतने गर्म हो जाते है कि पिघल जाते है और फिर भाप बन जाते है। धरती से ७०-८० मील की दूरी पर ही उल्का सुलगकर चमकने लगती है और जैसे-जैसे यह घने वायुमंडल में आती-जाती है, वैसे-वैसे उसकी चमक बढ़ती जाती है। जब धरती तक पहुँचने में २५-२६ मील रह जाता है तो यह जलकर समाप्त हो जाती है और गैस बनकर उड़ जाता है। टूटते हुए तारे की लम्बी फुलझड़ी वास्तव में जलती हुई भाप की चमक ही है।

लगभग एक करोड़ से लेकर दस करोड़ तक की संख्या में उल्कायें नित्य हमारे वायुमंडल में प्रवेश करती हैं और जलकर समाप्त हो जाती

हैं। इनमें से बहुतेरी इतनी छोटी होती है कि उनका भार छटाँक-आधी छटाँक से अधिक नही होता और उनकी चमक और आयु इतनी थोड़ी है कि ये हमे दिखाई नही पड़ती। परन्तु कुछ उल्काये २५-३० मन भारी होती है। ये जब वायुमडल मे पहुँचती है तो इतनी चमकीली हो जाती है कि आकाश मे चॉदना-सा हो जाता है। शीघ्र ही ये टूट जाती हैं और इनमे से बादल गरजने के समान शब्द होता है। इनके छोटे-छोटे टुकडे धरती पर गिर जाते है। यदि टुकडा बहुत छोटा हुआ तो उससे विशेष भय नही परन्तु बड़े-बड़े टुकड़े जिन्हे उल्का-प्रस्तर कहते है, बड़े-बडे नगरो को नष्ट कर सकते हैं।

इस ब्रह्माण्ड के भीतर जितनी जगहें ग्रहो और उपग्रहों से खाली है उनमे ये छोटे-छोटे पिड भरे है। ये पिड अकेले चलते है अथवा झुंड मे। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि यदि हम महाकाश की कल्पना समुद्र के रूप में करे तो ये हमे मछलियो की तरह जान पडेगे।

उल्का-प्रस्तर

कभी यह सुनने मे आता है कि अमुक स्थान पर पत्थरों की वर्षा हुई है। प्राचीन पुस्तको मे इस प्रकार की वर्षा के उल्लेख मिलते हैं। इसे दैवी-प्रकोप समझा जाता है। जहाँ पत्थरों की वर्षा होती, उस स्थान के लोग बहुत भयभीत हो जाते है और देवताओं को शान्त करने के लिए अनेक उपाय करते हैं परन्तु ये पत्थर केवल उल्का-प्रस्तर हैं, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है। बडी-बड़ी उल्कायें जब पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती है तो वे जल उठती हैं, उनका बहुत बड़ा अंश पिघल जाता है और भाप बनकर उड़ जाता है

अथवा वे टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। इन्हें ही हमने उल्का-प्रस्तर कहा है। ये टुकड़े पृथ्वी के आकर्षण में आकर धरती पर गिर पड़ते हैं।

ये उल्का-प्रस्तर हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। आकाश के अन्य पिंडों, ग्रह-नक्षत्र-धूम्रकेतु के सम्बन्ध में हम उनके प्रकाश के विश्लेषण से थोड़ा-सा जानते हैं। परन्तु इन पत्थरों पर हम रासायनिक प्रयोग कर सकते हैं और इनके द्वारा यह जान सकते है कि ब्रह्माण्ड के अन्य पिंड किन-किन तत्त्वो के बने है।

उल्कापात होने पर कभी-कभी एक ही बडा प्रस्तर पृथ्वी पर गिरता है परन्तु बहुधा अनेक टुकड़े गिरते है। १८६८ मे पुलतस्क नामक स्थान पर लगभग १,००,००० टुकडे गिरे पाये गये। इनमे से अधिकांश बहुत छोटे थे।

पृथ्वी पर अब तक जो उल्का-प्रस्तर पाये गये हैं उनमें सबसे बड़ा ग्रीनलैंड मे मिला है। इसका वज़न ३६½ टन है।

२० सितम्बर १९२८ को यू० पी० मे जालौन ज़िले में कत नामक गाँव के पास एक उल्का-प्रस्तर गिरा था जिसका एक टुकड़ा ५० मन का था। २३ सितम्बर १९२८ के "लीडर" समाचार मे इसके सम्बन्ध में जो विज्ञप्ति छपी थी उससे इसकी भयकरता का पता चलता है। वह इस प्रकार थी:—

"यहाँ पर जालौन ज़िला (यू० पी०) के कंत नामक गाँव के पास प्राणघातक उल्का के गिरने का समाचार मिला है। एक अमीन और उसका सहायक खेत नाप रहे थे। वे तुरन्त मर गये और एक तीसरा व्यक्ति सख्त घायल हुआ। पहले व्यक्ति की लाश का अभी तक पता नहीं चला, क्योंकि उसकी धज्जियाँ उड़ गईं। २० मील तक उल्कापात का

शब्द सुनाई पड़ा। लोग इस उल्के को परमेश्वर के क्रोध का चिह्न समझते है।"

परन्तु ससार के अनेक स्थानो मे इससे कही बड़े उल्का-प्रस्तर मिले है और कही भयानक उल्कापात हुए है। सबसे बड़ा उल्कापात ३० जुलाई १९०८ को साइबेरिया के येशीगाई प्रान्त मे हुआ था। उस समय ऐसा जान पडता था जैसे आकाश मे हजारो रेलगाडियाँ एक साथ घड़-घड़ाने लगी हो और हज़ारो मील तक पृथ्वी मे कँपकँपी पैदा हो गई थी। १९२७ मे रूसी सरकार ने प्रो० कुलिक को एक पार्टी के साथ इस उल्का-प्रस्तर की खोज के लिए भेजा। उन्होने खोज करके पता लगाया कि उल्का-प्रस्तर-समूह पृथ्वी मे धँस गये है जिनसे २०० से ऊपर गहरे गड्ढे बन गये है। इन गड्ढो मे से कुछ का व्यास तो ७५ फ़ुट से भी अधिक था। जिस जगह यह दुर्घटना हुई थी उसके १५ मील के घेरे मे पृथ्वी इस तरह फट गई जैसे उसे लोहे के ३०-४० फ़ुट के लम्बे हल से जोत दिया गया हो। सारी धरती इस तरह दिखलाई पड़ती थी जैसे तेज भट्टी मे भून दी गई हो। इस घेरे के बाहर सभी दिशाओं में २०-२० मील तक पेड उखड़ गये थे और घेरे के बाहर की ओर झुक गये थे। कुलिक और उसके दल को बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्हे वहाँ कोई प्रस्तर नहीं मिला। परन्तु उनका अनुमान है कि एक नही वरन् कई उल्का-प्रस्तर थे जिनमे से कुछ तो ३-३ हज़ार मन के होगे और ये धरती के बहुत नीचे धँस गये हैं। अमरीका के अरिज़ोना नामक स्थान में भी किसी समय ऐसा ही भीषण उल्कापात हुआ था। उससे जो भारी गड्ढा बना था उसका व्यास ४,००० फ़ुट है और उसकी दीवार गड्ढे के पेंदे से ६०० फुट ऊँची है। परन्तु यह दुर्घटना लगभग हज़ार वर्ष पहले हुई होगी।

जहाँ पर बड़े-बड़े उल्का-प्रस्तर गिरते है, वहाँ प्रलय आया समझिए। जिस तरह का उल्कापात साइबेरिया मे हुआ, वैसा यदि लन्दन, न्यूयार्क या कलकत्ता पर होता तो इसमे ज़रा भी सन्देह नही कि एक भी प्राणी उल्कापात की कथा कहने के लिए जीवित न बचता और उल्का-पात के बाद कदाचित् नगर का कोई चिह्न भी नही रह जाता। परन्तु ईश्वर को धन्यवाद है कि ऐसे उल्कापात अधिक नही होते। शायद इस प्रकार के उल्कापातों से डरकर ही लोग प्रत्येक उल्का को "ईश्वर का क्रोध" समझते है।

रासायनिक प्रक्रियाओ से ज्ञात हुआ है कि उल्कायें तीन तरह की होती है। एक तो बिलकुल पत्थर की बनी होती है। यह पत्थर घनत्व में भारी होता है और इसका रंग भूरा होता है। दूसरी तरह की उल्कायें केवल मात्र लोहे की होती हैं। इनका लोहा वैसा नहीं होता जैसा पृथ्वी पर पाया जाता है। यह लोहा रवेदार होता है। तेज़ाब मे छोड़ने के बाद उल्का-लौह की रवादार बनावट स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगती है। तीसरी तरह की उल्काओ में लोहा और पत्थर दोनो की मिलावट होती है।

उल्काओं का लोहा बहुत शुद्ध होता है। इसलिए इनसे थोड़ा लाभ भी होता है। बिना प्रयास के ही शुद्ध लोहा प्राप्त हो जाता है।

उल्का-झड़ी

कभी-कभी उल्काओं की झड़ी लग जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि आकाश में लगातार अनार (आतिशबाज़ी के बारूद भरे गोले) छूट रहे हों। सारा आकाश प्रकाश-बिन्दुओं से भर जाता है। इसे उल्का-झड़ी कहते हैं। उल्का-झड़ी में उल्कायें एक ही बिंदु से आती हुई जान पड़ती

है परन्तु वस्तुत वे समानान्तर रेखाओ मे चला करती है। कुछ उल्का-झड़ियाँ नियमित रूप से प्रत्येक वर्ष निश्चित समय पर दिखाई देती है। इससे ज्योतिष-शास्त्रियो का अनुमान है कि बहुत-सी उल्काये समूह बनाकर सूर्य के चारो ओर भ्रमण कर रही होगी। जब ऐसे किसी समूह के मार्ग मे पृथ्वी आ जाती है तो उल्काओ की झडियाँ लग जाती है।

नक्षत्र (तारे)

यो तो आकाश असंख्य तारो से भरा हुआ जान पड़ता है; ये सब तारे लगभग समान दूरी पर ही दिखलाई पड़ते है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। न तो तारे इतने पास हैं जितने वे दिखलाई पड़ते है, न वे सब समान दूरी पर है। पुच्छलतारे की गति, साधारणत: २०० मील प्रतिसेकंड है। अब यदि हम यह कल्पना करे कि हम पुच्छलतारे की पीठ पर चढ़कर आकाश की यात्रा कर रहे है तो हमे सबसे पास के तारे पर पहुँचने के लिए ४,००० वर्ष का समय चाहिए। यह सबसे पास का तारा अल्फाकंटारी है। यह बहुत ही चमकदार तारा है परन्तु यह केवल दक्षिणी गोलार्द्ध से दिखलाई देता है। हम उत्तरी गोलार्द्ध के निवासी अपने देशों से इसे नही देख सकते।

अल्फाकंटारी के बाद के दो तारे इतने चमकदार नहीं है। वे नंगी आँखो से दिखलाई नही देते परन्तु हम दूरदर्शक के सहारे उन्हें देख सकते है। उनके पश्चात् हमारे पास का चौथा तारा मृगव्याध है। यह इतनी दूर है कि अपने पुच्छलतारे की पीठ पर बैठकर हम ८,००० वर्ष में इस तारे तक पहुँच सकेगे। इसके बाद पाँच मंद-मंद तारे हैं इन्हें हम केवल दूरदर्शक से देख सकते हैं। पुच्छलतारे की गाड़ी पर चढ़कर हम इन तक १०,००० वर्ष में पहुँच सकेंगे। अन्य तारे तो और भी

दूर है। ध्रुवतारे को तो आप पहचानते ही है। इस तक पहुँचते-पहुँचते हमें चालीस सहस्र वर्ष लग जायँगे।

इस प्रकार हम देखते है कि तारे इतनी दूरी पर है जिसकी कल्पना भी नही होती, गणना की बात कौन कहे! हमारे सबसे बडे दूरदर्शक मे भी तारा बिन्दुमात्र से अधिक बडा दिखलाई नही देगा। वास्तव मे दूरदर्शक की शक्ति बढ़ जाने से भी उसकी दूरी मे कोई बड़ा अन्तर नही पडता। दूरदर्शक मे देखने से ग्रह-उपग्रह भी नगी आँखो की अपेक्षा बड़े दिखलाई पडने लगते है, परन्तु तारा उतना ही रहता है। ग्रह और तारे मे पहचान भी इसी प्रकार की जाती है। यदि प्रकाश-पिड अधिक शक्ति के दूरदर्शक मे देखने पर अधिक बडा दिखाई दिया तो वह ग्रह है, नही तो नक्षत्र। सच तो यह है कि तारो की दूरी की तुलना मे हमारा सौर-परिवार और उसके सदस्यों की दूरी कुछ भी नही है। महाशून्य के महासागर मे हमारा सौरपरिवार एक क्षुद्रद्वीप के समान है। सबसे निकट के नक्षत्र अल्फाकंटारी का उल्लेख हमने पिछले पृष्ठ मे किया है। पृथ्वी से जितना दूर सूर्य है, उससे २,७२,००० गुना दूर यह तारा है। हिसाब लगायें तो यह दूरी २,५०,००,००,००,००,००० मील निकलेगी।

परन्तु इस अध्याय मे हम तारो पर लिखने बैठे है, अतः हमे भिन्न-भिन्न तारो, तारा-समूहों और नीहारिकाओ की दूरी का निर्देश करना होगा। यदि हम कई शून्यो की एक पक्ति लिख देगे, तो तारो आदि की सापेक्ष दूरी का भी अनुमान नही हो सकेगा, बुद्धि उतनी बड़ी सख्या में ही उलझ जायगी। अत, अनन्त देश-काल को नापने के लिए एक बड़ा मापदंड बना लेना चाहिए। वैज्ञानिकों ने इस तरह का एक मापदंड बना लिया है। हम उसी को लिये लेते है।

प्रकाश की गति १,८६,००० मील प्रतिसेकंड है। एक सेकंड से कम समय में सूर्य की एक किरण पृथ्वी की भूमध्यरेखा (विषुवत्रेखा) का सात बार चक्कर कर आयेगी। सूर्य से पृथ्वी की यात्रा करने में उसे ८$\frac{1}{3}$ मिनट से अधिक समय नही लगता होगा। यदि हम इस प्रकार गणना करे तो हमे पता लगेगा कि यदि प्रकाश की एक किरण एक वर्ष तक लगातार चलती रहे तो वह ६०,००,००,००,००,००० मील की यात्रा करेगी। ज्योतिषशास्त्र मे प्रकाश-किरण की एक वर्ष की यात्रा को मानदड माना जाता है। इसे अनन्त की नाप की 'इकाई' समझिए।

अब यदि हम गणना करके देखे तो हम जानेगे कि प्रकाश-किरण को सबसे निकट के तारे तक पहुँचने मे ४$\frac{1}{3}$ वर्ष लग जायँगे। इसे हम सक्षेप मे यो कह सकते है—इस तारे की दूरी ४$\frac{1}{3}$ प्रकाशवर्ष है। नगी आँख से हमे जितने तारे दिखलाई देते है, उनके आधे के लगभग ४०० प्रकाशवर्ष दूर है और आकाशगगा के सबसे दूर के तारे १,००,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर है।

साधारण तौर पर इन अनेक शून्य-बिन्दुओ की पलटन का हम पर कोई प्रभाव नही पडता, परन्तु यदि हम थोडी देर ध्यान दे तो प्रकृति की विशालता के सम्मुख हम नतमस्तक हो जाते है। खुले मैदान मे खड़े हुए जब हम आकाश की ओर सिर उठाते है तो अनेक नक्षत्रो की किरणे अपनी बडी लम्बी यात्रा पूरी करके हमारी आँखो पर पडती है और हमारे मस्तिष्क के केन्द्रो को स्पर्श करती है। संभव है, अभी जो एक तारा हमे दीखा और एक विशेष किरण हमारी आँख की पुतली पर पड़ी वह उस समय चली हो जब महाराणा प्रताप हल्दीघाटी में युद्ध कर रहे थे। संभव है, यह दूसरी किरण उस समय चल पडी

हो जब भगवान् कृष्ण कुरुक्षेत्र के रणस्थल में अर्जुन को गीता का उपदेश दे रहे थे या रामचन्द्र जी वन-यात्रा के लिए अयोध्या से निकल रहे थे। सभव है, तीसरे तारे की इस किरण ने तब यात्रा करनी शुरू की हो जब आदिम मनुष्य पृथ्वी पर घूमा करते थे। कितने विस्मय की बात है। मनुष्य कितना क्षुद्र प्राणी है। उसका जीवन ही कितना! परन्तु अपने इन चर्म-चक्षुओ के द्वारा वही क्षुद्र मनुष्य अनन्तकाल और अनन्त देश का स्पर्श कर लेता है। अगणित तारो की प्रकाशकिरणे अतीत के असख्य वर्षो और अनन्त दूरी पर बसे हुए पिडो से उसका सम्बन्ध जोड़ती है। क्या मनुष्य को इसी लिए नक्षत्रो का कृतज्ञ नही होना चाहिए—उन्होने हमारे जीवन को काल और देश की सीमा से मुक्त कर दिया है।

अमावस्या की रात मे हम नगी आँख से दो हज़ार तारे आकाश मे देख सकते है। परन्तु दूरदर्शक के सहारे देखने पर हमे कही अधिक तारे दिखलाई पड़ते है। इस तरह हम आकाश-गगा के तारो को छोडकर दस सहस्र से अधिक तारे देख सकते है। दूरदर्शक के सहारे आकाश का फ़ोटो लेने से यह संख्या कई गुनी बढ़ जाती है। ज्योतिषियों का विश्वास है कि कुल मिलाकर दस करोड़ तारे होंगे। परन्तु यह अनुमान किया जाता है कि इससे कही अधिक गुना तारे ऐसे होंगे जिनमे प्रकाश नही है। इन सबको मिला लेने पर तारो की सख्या ३ अरब के निकट पहुँच जायगी।

इतने तारो की गणना कैसे की जाती है, यह भी एक रोचक प्रश्न है। सच तो यह है कि ज्योतिषियों ने इनकी गणना करने का एक बहुत ही मौलिक और विचित्र ढंग निकाला है। आप जानते हैं कि तारों के सम्बन्ध मे अधिक खोज उनके प्रकाश की सहायता से

होती है । इसलिए प्रकाश के अनुसार तारो के अनेक वर्ग बनाये गये है। सबसे अधिक चमकीले तारो को पहली श्रेणी के तारे कहते हैं। पहली श्रेणी के कुछ प्रसिद्ध तारे मृगव्याध, रोहिणी, अगस्त्य, अभिजित्, ब्रह्महृदय और स्वाति है। इसके बाद दूसरी श्रेणी के तारे है जो पहली श्रेणी के तारो से कई गुना कम चमकीले हैं। इस प्रकार प्रथम श्रेणी का तारा छठी श्रेणी के तारे की अपेक्षा सौ गुना अधिक प्रकाशित है। इन छठी श्रेणी के तारों को भी हम नगी ऑखों से देख सकते है। परन्तु सातवी श्रेणी के तारो को हम बड़ी कठिनता से देख पाते है। परन्तु जब हम दूरदर्शक हाथ मे लेते है तो इनके सम्बन्ध मे हमें कुछ भी कठिनाई नही पड़ती। जिस प्रकार नगी आँखो से तारो की चमक देखकर हम उनकी श्रेणियाँ करते है, उसी प्रकार दूरदर्शक मे देखकर भी हम उनकी श्रेणियाँ कर सकते हैं। इस प्रकार श्रेणियो की सख्या अट्ठारह तक पहुँचकर अन्त हो जाती है। संसार के सबसे बडे दूरदर्शक के द्वारा हम अठारहवी श्रेणी तक के तारे देख सकते है।

परन्तु यह नही समझना चाहिए कि दूरदर्शक मे हम इन सभी तारों को आँख से देखते है। दसवी श्रेणी के तारो पर पहुँचकर दूरदर्शक हमें सबसे कम प्रकाशवाले तारे दिखलाता है। इससे कम प्रकाश के तारो के लिए फोटो लेने की आवश्यकता पड़ती है। दूरदर्शक के कैमरे पर फ़ोटो की प्लेट चढ़ाकर उसे बड़ी देर तक यों ही छोड दिया जाता है। कुछ समय बाद प्लेट हलके-हलके बिन्दुओं से भर जाता है। इस प्रकार हम दसवे परिमाण से भी सौ गुना मंद तारों को ग्रहण कर लेते है।

परन्तु जितने तारों से हम इस प्रकार परिचित हो पाते हैं वह उस

संख्या की तुलना में बहुत ही कम है जो हमारे लिए फिर भी अपरिचित रह जाती है।

आकाशगंगा और उसके तारे

चाँदनी रात मे, जब आकाश मे बादल नही हो, हमे कम-उज्ज्वल मोतियों के रंग की एक महराब क्षितिज के एक कोने से दूसरे कोने तक जाती दिखलाई देती है। क्षितिज के नीचे इसका रूप क्या है, यह हम नही बता सकते। परन्तु यदि दक्षिण गोलार्द्ध की यात्रा करे, तो इसका रहस्य खुल जायगा। असल मे यह प्रकाश का महराब नही है, वरन् एक महान् वृत्त है जो पृथ्वी को घेरे हुए है। हमे यह लगभग अर्द्ध-वृत्त इसलिए दिखाई देती है कि हम आकाश का केवल आधा भाग ही एक बार मे देख सकते है।

संसार के प्रत्येक भाग मे आकाशगगा का रूप एक-जैसा दिखलाई नही पड़ता। किसी भाग मे वह उथली नदी की तरह बहती जान पड़ती है। कही वह उमडकर फैल जाती है। कही वह तग हो जाती है और नेत्रो से लगभग छिप जाती है। इसके सिवा प्रत्येक स्थान पर वह एक तरह की नही है। कही उसमे घाटियाँ पड़ी है। कही काले-काले छेद हैं। कही जैसे अँधेरी गलियाँ है। कही उसमे झाड-फानूस लटकते दिखलाई देते है। वास्तव मे आकाशगगा विचित्र वस्तु है।

नीले आकाश की चित्रपटी पर असंख्य छोटे-छोटे कम टिमटिमाते हुए तारे छिटके पड़े है—इसी दृश्य को हम आकाशगगा कहते है।

नगी आँखो से हम १० सहस्र से अधिक तारे नही देख सकते। परन्तु आकाशगंगा में ६ करोड़ ४० लाख तारे है। ये तारे हमे इतने पास दिखलाई पड़ते हैं कि हम उनके बीच में कोई अन्तर नही देखते,

परन्तु वास्तव मे उनके बीच का अन्तर इतना अधिक है कि कल्पना स्तब्ध रह जाती है।

अगले अध्याय मे हम नीहारिकाओ का वर्णन करेगे। हमारी आकाश-गगा भी ऐसी ही एक नीहारिका है। उसकी अजगर-जैसी कुडली मे हम बन्द है। हम सारी कुडली इसलिए नही देख सकते कि हम उसमे बन्द है। फिर हम उस कुडली के केन्द्र मे भी नही, एक किनारे पर है। यदि आकाशगगा को पहिया माने, तो हम हाल के पास है, धुरी से बहुत दूर।

युगल तारे

यों नेत्रो से देखने पर सब तारे प्रकाशबिन्दु-मात्र दिखलाई देते है परन्तु यह जानकर आश्चर्य होगा कि इनमे कितने ही बिन्दु वास्तव मे दो बिन्दु है। वास्तव मे कुछ तारो की दशा ऐसे दो बालको की है जो 'जुड़े हुए' जन्म लेते है। यद्यपि ये तारे इस प्रकार जुडे हुए नही है, परन्तु ये इतने पास-पास होते है कि आँख से देखने या फ़ोटो लेने पर एक बिन्दु-मात्र दिखलाई देते है। हम इन्हे युगल तारे कहेगे। यहाँ पर पाठको को एक बात के विषय मे सावधान कर देना होगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि दो तारे आगे-पीछे एक दूसरे से बहुत ही अधिक दूरी पर बसे है परन्तु लगभग एक ही सीधी रेखा मे दिखलाई पड़ने के कारण युगल तारे-जैसे लग सकते है। असल मे वे युगल तारे नहीं है।

सप्तर्षियो मे दूसरा तारा वशिष्ठ वास्तव में दो तारो से मिलकर बना है। बाद को तो अनेक युगल तारो का पता चला। हमारे दो परिचित नक्षत्र—मृगव्याध और अल्फाकंटारी—वास्तव में युगल तारे ही है। अब तो ज्योतिषियों को लगभग १५,००० युगल तारों का पता लग गया

है। कोरी आँखो से हमे जितने तारे दिखलाई देते है दूरदर्शक मे देखने से उनमे से प्रत्येक दस मे एक तारा युगल तारा अवश्य दिखलाई पड़ेगा। ज्योतिषियो का कहना है कि समस्त तारो मे लगभग तिहाई अवश्य युगल तारे है।

परन्तु ऐसे युगल तारे बहुत कम है जिनका पता केवल दूरदर्शक के सहारे चल सके। अधिकाश युगल तारो को हम केवल वर्णपरीक्षक यंत्र के द्वारा वर्ण-परीक्षण करके ही पहचान सकते है।

इन युगल तारो के अध्ययन करने से गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त अधिक स्पष्ट हो जाता है। हमे सचमुच आश्चर्य हो सकता है कि दो तारे इतने पास-पास किस प्रकार रुके हुए है। परन्तु पता लगा है कि ये दोनों तारे एक ही केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगाते होते है। यह चक्कर ८ घटे मे भी पूरा हो सकता है और एक हजार वर्षों मे भी। जो युगल तारे कम समय मे केन्द्र की परिक्रमा कर लेते है वे लगभग मिले-मिले है, जिन्हें बहुत अधिक समय लगता है वे लाखो मीलो की दूरी पर हैं। इन तारो के आविष्कार ने एक दूसरी तरह नक्षत्र-विज्ञान मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। उनसे हमे जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसके सहारे तारो का भार मालूम किया जा सकता है। इस अध्ययन से हमे एक आश्चर्यजनक बात का पता लगा है। हमने पिछले लेख मे लिखा है कि तारों के व्यास मे बड़ा भारी अन्तर है; कुछ तारे बहुत छोटे है, कुछ देव-तुल्य हैं। परन्तु तारों के भार के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नही। सबसे छोटे तारों का वज़न सूर्य के वज़न का तिहाई है और सबसे बडे तारे हमारे सूर्य से तीन-गुना भारी है।

इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि जिन तारों का व्यास कम है उनका घनत्व अवश्य अधिक होगा। इसके विपरीत बड़े तारों

का घनत्व बहुत कम होगा। ज्येष्ठा नक्षत्र का व्यास बहुत अधिक है, अतः उसका घनत्व हमारे वायुमडल के घनत्व का सौवाँ भाग है।

वर्ण-परीक्षण के द्वारा पता चलता है कि तीन-तीन, चार-चार बड़े-बड़े तारे एक-दूसरे की परिक्रमा करते हुए घूम रहे है। एक नक्षत्र-समूह मे तो कम से कम छ तारे इस तरह आस-पास घूम रहे हैं। यह नक्षत्र-समूह मृगशिरा नक्षत्र-समूह के नाम मे प्रसिद्ध है। कभी-कभी युगल तारे के प्रत्येक तारे मे दो-दो तारे सिद्ध हो जाते है।

चंचल तारे

कुछ तारे ऐसे भी है जिनका प्रकाश सदा एक-सा नही रहता, कभी बढ जाता है, कभी घट जाता है। परन्तु उनका प्रकाश कब बदलेगा, इसका कोई समय निश्चित नही है। किसी-किसी तारे का प्रकाश महीनों मे बदलता है, किसी-किसी का वर्षो मे। इस प्रकार के तारो को हम "चचल तारे" कहेगे।

चचल तारे दो तरह के होते है। कुछ ऐसे होते हैं जिनके प्रकाश के कम-अधिक होने का समय निश्चित है। प्रत्येक चंचल तारे का अपना अलग समय है। ठीक समय आने पर उसका प्रकाश कम होने लगता है और इसी प्रकार फिर एक निश्चित समय आने पर प्रकाश बढने लगता है। ऐसे तारो की चमक के कम होने अथवा बढने का समय अधिक लम्बा भी नही है। इस पूरी प्रक्रिया मे उन्हे २० दिन से अधिक नही लगते। परन्तु कुछ अन्य तारे ऐसे है जो आकार में पिछले तारों से कही अधिक बडे है और जिनके प्रकाश के मन्द और तीव्र होने का समय इतना निश्चित नहीं है। इस पूरी प्रक्रिया मे इन्हें २५० से ३३० दिन तक लग जाते हैं जिस प्रकार से मनुष्य का हृदय बढता

और सिकुडता रहता है, कुछ इसी प्रकार से ये तारे भी फैलते-सिकुडते रहते है। परन्तु वैज्ञानिक निश्चित रूप से चंचल तारो की "चचलता" का कारण कुछ भी नही बता सकते।

नक्षत्र-समूह

मधुमक्खियो को बैठते हुए आपने जरूर देखा होगा। बीच मे कुछ मक्खियाँ छत्ता बनाने मे लग जाती है। यहाँ पर वह झुंड के रूप मे दिखलाई पडती है। यह झुड गोल होता है। इस झुड को घेरकर एक बड़ी सख्या भिनभिनाती हुई उडती रहती है। यदि प्रत्येक मधुमक्खी को हम एक नक्षत्र समझ ले तो मधुमक्खियो के इस झुड को देखकर हम "नक्षत्र-समूह" के रूप का अनुमान कर सकेगे।

ऐसे सौ नक्षत्र-समूहो का हमे पता है। इनका आविष्कार हुए लगभग आधी शताब्दी बीत गई। अधिक शक्तिवाले दूरदर्शको ने इनकी सख्या मे वृद्धि नही की। अतः वैज्ञानिक समझने लगे है कि आकाश मे इससे अधिक नक्षत्र-समूह नही है। नगी आँख मे केवल ४-५ नक्षत्र-समूह ही दिखलाई पडते है और वे भी बडे धुंधले। दूरदर्शक मे देखने से भी इनके प्रत्येक तारे का व्यक्तित्व स्पष्ट नही हो पाता।

हरक्यूलिस और परसियस नाम के दो तारा-समूहो से हम अधिक अच्छी तरह परिचित है। इनका अध्ययन करने से मालूम हुआ है कि वास्तव मे इन तारा-समूहों मे भी प्रत्येक दो तारे के बीच की दूरी करोडो मील की है। एक तरह से समूह के तारे अकेले ही है परन्तु जब दूर से देखे जाते है तो वे अकेले नही दिखलाई देते, वरन् झुड या समूह के रूप मे दिखलाई देते है।

शक्तिशाली दूरदर्शको के प्रयोग से पता चलता है कि प्रत्येक नक्षत्र-समूह मे १०,००० से लेकर १,००,००० से भी अधिक तारे है। ये सब तारे कुछ इस तरह से स्थित है कि गोलाकार समूह के रूप मे दिखलाई पडते है। नक्षत्रमडल की परिधि के पास तारो की सख्या बहुत कम होती है परन्तु केन्द्र की ओर यह सख्या बढती जाती है। केन्द्र के पास तारो की सख्या इतनी अधिक होती है कि अलग-अलग तारो को पहचानना असम्भव है, वहाँ केवल उजाला-उजाला-सा दिखलाई देता है।

इन नक्षत्र-समूहो मे कुछ चचल तारे भी दिखलाई पडे है। इनकी सहायता से पृथ्वी से नक्षत्र-समूहो की दूरी भी नाप ली गई है। हमसे सबसे पास का नक्षत्र-समूह १५,००० प्रकाशवर्ष अथवा ९,०,००,००,००,००,००,००,००० मील दूर है। सबसे दूर के नक्षत्र लगभग २,००,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर है।

तारों की गति

साधारणत हम कहते है—ग्रह चलते है, तारे स्थिर है। परन्तु बात ऐसी नही है। तारे भी गतिशील है, परन्तु उनकी गति ग्रहों की गति की अपेक्षा बहुत धीमी है। अत. हम उनकी उपेक्षा करते है। "हैली केतु" के सम्बन्ध मे पीछे हम हैली का उल्लेख कर आये हैं। पहले-पहल इसी वैज्ञानिक ने बतलाया कि तारों मे भी गति है। तारे इतनी दूर है कि हम अपनी पृथ्वी पर से उनके स्थान मे कोई परिवर्तन नही देख पाते। परन्तु गणना-द्वारा पता लगा है कि २,५०,००० वर्ष बाद तारो की गति के कारण हमारे ऊपर के आकाश मे इतना अन्तर हो जायगा कि जिन नक्षत्र-समूहों (राशियों) से हम परिचित है, उन्हे हम उस समय नही देख पायेगे।

यदि तारे चलते नही होते तो पृथ्वी के चलने के कारण ही उन्हे चलता हुआ दीख पडना चाहिए था। जब हमारी रेल चलती होती है नो बाहर के स्थिर पेड़, मकान, पहाड आदि विपरीत दिशा मे चलते हुए मालूम देते हैं । परन्तु तारों के सम्बन्ध मे ऐमी कोई बात नही देखी जाती ।

ऋतुओं के परिवर्तन के साथ कुछ तारे अवश्य हटे-से जान पडते है। ध्रुवतारे को हम अवश्य अटल मानते है परन्तु प्राचीन ग्रन्थो की खोज से यह पता चल गया है कि ध्रुव भी अटल नही है। वास्तव मे ५,००० वर्ष पहले यह तारा हमारा ध्रुव था ही नही । उस समय अजगर नक्षत्र-समूह का एक तारा हमारा ध्रुव था। ५,००० वर्ष बाद सेफियस समूह का एक तारा हमारे आज के ध्रुवतारे का स्थान ले लेगा। वास्तव मे आकाश में कोई भी पिण्ड ऐसा नही है जिसमें गति न हो ।

नीहारिकायें

तारों और आकाशगंगा पर जाकर ही हमारी सृष्टि समाप्त नही हो जाती। महाकाश में अन्य कितने ही आश्चर्य छिपे है।

जिस एक आश्चर्य के सम्बन्ध में हमे इस अध्याय मे लिखना है वह उन सब आश्चर्यों से बढ़कर जिन्हें मनुष्य अब तक जान सका है या जिनकी कल्पना कर सका है। इस आश्चर्य का नाम "नीहारिका" है।

दूरदर्शक के सहारे देखने पर तारे छोटे-छोटे प्रकाश-बिन्दुओ से अधिक नहीं दिखलाई पड़ते। हमारे सबसे बड़े दूरदर्शक की शक्ति इन्हें इससे अधिक बढ़ाकर नहीं दिखा सकती। तारे महाकाश में इधर-उधर छिटके हुए बिन्दु-मात्र हैं। परन्तु दूरदर्शक के सहारे एक और तरह के

पिड दीखते है जो तारो की तरह बिन्दु के आकार के नही है। वे फैले हुए ज्योति-समूह की तरह लगते है । देखने में ये बडे सुन्दर जान पड़ते है। हृदय मुग्ध हो जाता है, जैसे सामने जादू का तमाशा हो। भिन्न-भिन्न आकार के इन ज्योति-समूहो को ही हम नीहारिका कहते है । इनमे कुछ इतने गहरे रंग के है कि उनमे तारे छिप जाते है और हमे दिखलाई नही पडते। कुछ चमकीले, बारीक, ज़री के बने हुए जाल की तरह आकाशगगा के तारो मे फैले हुए है। ये सब जिस तत्त्व के बने हुए है, वह बहुत सूक्ष्म है। परन्तु कुछ नीहारिकायें तारों के समूह-मात्र है जो दूरी के कारण प्रकाश के दूधिया रग के धब्बे की तरह दिखलाई पडते है ।

नीहारिकाओ की खोज इस शताब्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण खोज है। इनके अध्ययन से वैज्ञानिकों को पता लगा है कि तारों का जन्म किस प्रकार होता है, तारक-समूह किस प्रकार बनते है, आकाशगंगा क्या है, तथा सृष्टि का रूप क्या है और वह कितनी बड़ी है। इन प्रश्नों के उत्तर जीवन के प्रतिमनुष्य के दृष्टिकोण पर महान् प्रभाव डालने है। अस्तु ।

कोरी आँखो से केवल एक या दो नीहारिकायें दिखलाई पड़ती है, वह भी प्रकाश के धुँधले धब्बे के रूप में। दूरदर्शक के सहारे उनका आकार-प्रकार अधिक स्पष्टतः देखा जा सकता है। परन्तु वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इतना ही काफी नही है। बड़े दूरदर्शक के प्रयोग से भी अधिक सहायता नही मिल सकती। उसमें नीहारिका बड़ी तो दिखलाई पड़ती है परन्तु वह फिर भी इतनी धुँधली रहती है कि सब धुआँ-धुआँ-सा लगता है और उसको देखकर कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। किया यह जाता है कि दूरदर्शक में फ़ोटोग्राफ़ी

की प्लेट लगा दी जाती है और उसे घटो, कभी-कभी कई दिन तक, इसी तरह लगा छोड दिया जाता है। इस प्रकार प्रकाश की मात्रा इतनी इकट्ठी हो जाती है कि चित्र मे रूप-रेखाये स्पष्ट आ जाती है।

इन रूप-रेखाओं के आधार पर नीहारिकाओ की बनावट का अध्ययन किया जाता है और उनका आकार देखा जाता है। पदार्थ की स्थिति की दृष्टि से नीहारिकाये तीन प्रकार की होती है :—

(१) छिन्न-भिन्न नीहारिकाये। (२) कुडलाकार नीहारिकाये। और (३) पेचदार नीहारिकाये।

इनमे से पहले दो प्रकार की नीहारिकाये सृष्टिचक्र के उस भाग मे वर्तमान है जिसमे हमारा सौरपरिवार है। ये हमारी आकाशगगा के भीतर है। तीसरे प्रकार की नीहारिकाये आकाशगगा से बाहर शून्य मे सर्वत्र व्याप्त है। इन अन्तिम प्रकार की नीहारिकाओ के अध्ययन ने ज्योतिषशास्त्र मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

पहले हम छिन्न-भिन्न नीहारिकाओ को लेते है। ये दो प्रकार की होती है, एक तो चमकीली, दूसरी काली।

आकाशगंगा मे यहाँ वहाँ काले धब्बे दिखलाई पड़ते है। पुराने ज्योतिषियो का विश्वास था कि ये बड़े-बड़े छेद है जिनके पार हम महाशून्य को बड़ी गहराई तक देख सकते है। ई-ई-बर्नार्ड ने इनका अध्ययन करके इनकी गिनती १८२ ठहराई। उन्होने यह सिद्ध किया कि ये आकाशगगा की खिड़कियाँ नही है क्योकि इनमे से कितने ही धब्बो की रूप-रेखायें बहुत ही स्पष्ट है। उन्होने स्पष्ट कह दिया कि ये धब्बे वास्तव मे ऐसे घने तत्त्व के बादल है जो पृथ्वी और अधिक दूर के तारों

आकाशगंगा नीहारिका—पृष्ठ ६६

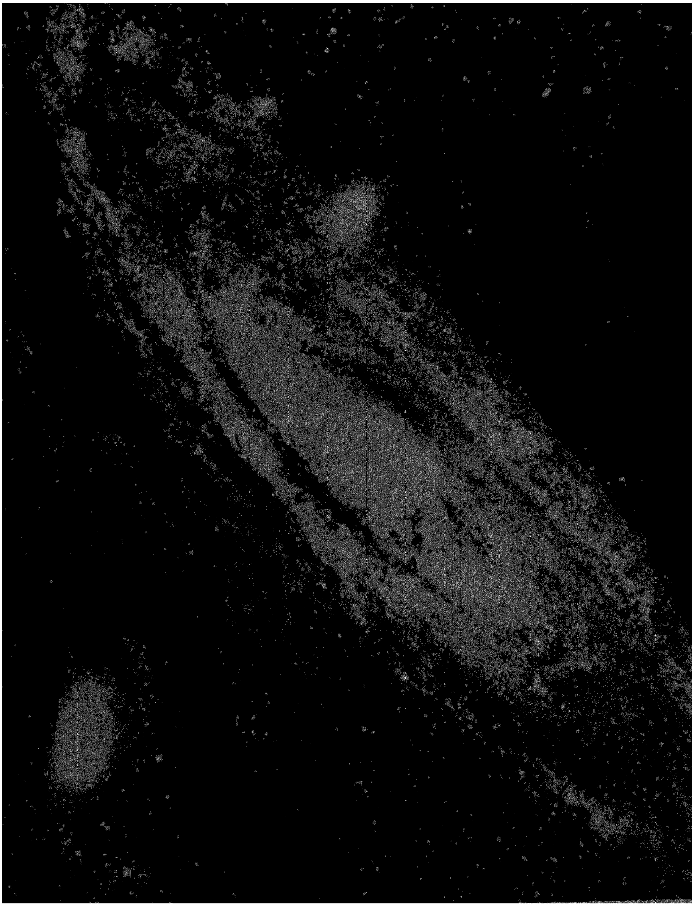

एक वृहत् नीहारिका—पृष्ठ ६८-६६

के बीच मे आ जाते है और उन तारो के प्रकाश को हम तक पहुँचने नहीं देते। इन्हे हम "अँधरी नीहारिकाये" कह सकते है।

ये अँधरी नीहारिकाये बहुत बडी है। इनमे से एक तो इतनी बड़ी है कि वह आकाशगगा के बीच मे चली जाती है और उसकी दो पट्टियाँ कर देती है। एक दूसरी नीहारिका ६० प्रकाशवर्ष लम्बी और ५ प्रकाशवर्ष चौडी है।* ये नीहारिकाये गैस की बनी है। गैस किस प्रकार की है, यह हम नही जानते। परन्तु यह गैस हवा मे ३० लाख गुना हलकी है। यदि एक वर्गइंच हवा को एक वर्गमील मे छोड दिया जाय तो वह फैलकर उसे भर देगी। इस परिस्थिति मे उसका जितना घनत्व होगा, उतना घनत्व इस गैस का है। परन्तु प्रश्न यह हो सकता है कि इतने कम घनत्व की गैस मे से दूर के तारो का प्रकाश छन क्यो नही सकता। उसको बाधा क्या है? परन्तु गणितज्ञ हिसाब लगाकर बता देता है कि यदि ऐसे हलके पदार्थ का भी बड़ा बादल हो तो उसमे भी प्रकाश नही छन सकेगा। इतना बड़ा बादल इन नीहारिकाओ से अवश्य बन जाता है।

उजली नीहारिकाओं का आकार कही बहुत छोटा है, कही बहुत बड़ा। नई खोजों से पता चलता है कि इन नीहारिकाओं के साथ एक तारा अवश्य रहता है। कभी कभी कई तारे रहते है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि ये उजली नीहारिकायें अँधेरी नीहारिकाओ से किसी भी प्रकार भिन्न नही है। केवल तारों की उपस्थिति के कारण उन्हें प्रकाश मिल जाता है और वे चमकने लगती हैं। कुछ नीहारिकायें तारों के प्रकाश को प्रतिफलित करती हैं और इस प्रकार चमकती

---

* एक प्रकाशवर्ष = ६०,००,००,००,००,००० मील।

दिखलाई देती है। परन्तु जिन अन्य नीहारिकाओं के समीप बड़े तारे हैं, उनका पदार्थ तारे के प्रकाश को ग्रहण कर लेता है और जलने लगता है। इस प्रकार यह पदार्थ प्रकाशित हो जाता है।

दूसरे प्रकार की कुंडलाकार होती है। उन्हे देखने से ऐसा लगता है जैसे बीच मे एक तारा है और उसे घेरे हुए गैस की एक कुण्डली है। परन्तु वास्तव मे बीच में तारा रहता होगा और चारो ओर गैस के कई गोलाकार चक्र होगे। इस प्रकार की नीहारिकाये अधिक नही हैं। अब तक ये लगभग १५० देखी गई है।

अब हम उन नीहारिकाओं की बात लेते है जो हमारे अपने सृष्टिचक्र के भाग के बाहर है। ये दो प्रकार की है--गोल और पंचदार। परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य टेढ़ी-मेढी, अनिश्चित शकलों की नीहारिकायें भी है। इन सब नीहारिकाओं के सम्बन्ध मे विशेषता यह है कि इनका आकार अपने वर्ग की अन्य नीहारिकाओ से भी पूरा-पूरा नही मिलता। वस्तुत: ये सब किसी एक ढाँचे मे ढली हुई दिखलाई नही पड़तीं। जिन्हें हमने गोल नीहारिकायें कहा है, वे निश्चित रूप से गोल हों, यह बात नही। कुछ बिलकुल गोल है, कुछ थोड़ा-सा चपटापन लिये, कुछ उभरी ताल (दर्पण) की तरह; कुछ एक किनारे से देखने पर सूत की पिंडी जैसी लगती है। चक्करदार नीहारिकायें भी अनेक प्रकार की हैं। एक ओर वे नीहारिकायें है जिनका केन्द्रभाग ("नाभि") बड़ा है और चक्कर छोटे और समीप-समीप है। दूसरी ओर वे नीहारिकायें हैं जिनका केन्द्रभाग छोटा है और चक्कर बड़े और फैले हुए है।

पेंचदार (या चक्करदार) नीहारिकाओं के सम्बन्ध में दो विचित्रताये याद रखनी होंगी। एक तो पृथ्वी से उनकी दूरी के सम्बन्ध में; दूसरे उनके आकार के सम्बन्ध में। पृथ्वी से सबसे निकट की चक्करदार

नीहारिकाये ८,७०,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। अन्य नीहारिकायें इससे भी अधिक दूरी पर बसी हुई है। ससार के सबसे बड़े दूरदर्शक मे ऐसी २०,००,००० चक्करदार नीहारिकायें दिखलाई पड़ती है। जो सबसे अधिक दूरी पर दिखलाई पड़ती है, उनकी दूरी १४,००,००,००० प्रकाशवर्ष है। इतनी दूरी की तो कल्पना भी सम्भव नही।

इन नीहारिकाओ का आकार भी इतना ही अद्भुत है, जितनी इनकी बनावट और दूरी। एण्डरोमेडा नाम की नीहारिका का व्यास ६०,००० प्रकाशवर्ष है। एम ३३ कुछ छोटी है। उसका व्यास लगभग २,००० प्रकाशवर्ष है। गणित से पता चलता है कि एण्डरोमेडा नीहारिका हमारे सूर्य से २७,००,००,००० गुनी भारी है। यहाँ हमारी कल्पना एक बार फिर स्तब्ध रह जाती है।

गोल निहारिकायें गैस से भरे हुए बड़े गेद की तरह है। उनमें किसी प्रकार का सगठन नही। जो क्रमशः अधिक चपटी जान पड़ती है, उनकी भी यही दशा है। उनमे किसी प्रकार का रचना-सौष्ठव नही है, केवल तत्त्व या पदार्थ-भर है। परन्तु चक्करदार या पेचदार नीहारिकाओं में यह बात नही। जिन चक्करदार नीहारिकाओ मे नाभि बड़ी है, उनमें बीच का भाग गोल नीहारिका की भाँति रचना-सौष्ठवहीन है और भुजाये बहुधा टुकड़े-टुकड़े होकर टूटती जान पड़ती है। जिनकी नाभि छोटी है, उनमे केन्द्र के भाग की रेखाये अधिक स्पष्ट हो जाती हैं और वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। साथ ही भुजाये खुलती हुई और छोटे-छोटे टुकड़ों मे टूटती हुई दिखलाई पड़ती है। शक्तिशाली दूरदर्शकों से देखने पर ज्ञात होता है कि खूब खुली हुई भुजायें तारों के बादलों जैसे घने समूह की बनी हुई है। इन्हें हम हरशेल के शब्दों मे "द्वीप" कह सकते हैं।

पीछे हम इस नतीजे पर पहुँच गये है कि नीहारिका का असली रूप गोले का है। परन्तु सभी नीहारिकाये गोल नही है । जो दो नीहारिकाये हमारे सबसे अधिक निकट है वे पाव रोटी की तरह चपटी है। हमारा सौरपरिवार जिस नीहारिका मे है वह भी चपटी है यद्यपि इतनी नही। अन्यत्र चित्र मे नीहारिका के अनेक आकार दिखलाये गये है। यदि हम गोलाकार नीहारिका से आरम्भ करे और चपटी नीहारिका तक चले तो एक अच्छी श्रेणी बन जाती है। नीहारिकाओ को इस क्रम से रखने पर हमे कई नई बाते मालूम होती है । जैसे सबसे अधिक चपटी नीहारिका सबमे बड़ी है और जैसे-जैसे चपटापन कम होता गया है, नीहारिकाये वैसे-वैसे छोटी होती गई है। चपटी नीहारिका मे तारों की सख्या सबसे अधिक है; फिर चपटापन कम होने के साथ धीरे-धीरे तारो की सख्या भी कम होती गई है, यहाँ तक कि गोलाकार नीहारिका मे एक भी तारा नही। इससे यह अनुमान किया जाता है कि नीहारिका का सबसे विकसित रूप चपटी नीहारिका का है और गोलाकार नीहारिका सबसे कम विकसित है। निष्कर्ष यह है कि पहले नीहारिकाये गोलाकार नीहारिकाओ के रूप मे रहती है, फिर कालांतर मे बीच की दशाओ को पार करके चपटी हो जाती है।

हमने ऊपर देखा है कि चपटी नीहारिका का सबसे अविकसित रूप गोलाकार नीहारिका है। इससे हम अनुमान कर सकते है कि जब तारो का जन्म नही हुआ था तब नीहारिकायें इसी रूप मे थी। गोलाकार नीहारिकाओं में पदार्थ गैस के रूप मे रहता है। अत:, यदि हम अपनी कल्पना को और पीछे ले जायँ तो हम यह भी समझ सकते है कि एक समय ऐसा था जब कोई भी नीहारिका नही थी। तब क्या

था ? उस समय सारा महाशून्य गैस से इस प्रकार भरा हुआ था जैसे कमरे मे हवा भरी होती है। वैज्ञानिको ने यह सिद्ध कर दिया है कि शून्य भर मे गैस प्रत्येक स्थान पर एक-जैसी बँटी नही रहेगी । वह तुरन्त ही गेदों के रूप मे घनी होने लगेगी। गणित से यह सिद्ध हो गया है कि आज महाशून्य मे जितनी नीहारिकाये है, शून्य के पदार्थ मे उतने ही गेद बन सके होगे।

इससे यह धारणा बँधती है कि सृष्टि का प्रारम्भ गैस के रूप मे हुआ जो महाशून्य को भरे थी और इस गैस के घनीभूत होने से नीहारिकाओ का जन्म हुआ।

आरम्भ मे महाशून्य मे गैस भरी हुई थी। वह सब जगह एक-सी ही घनी थी। गैस के प्रत्येक अणु का आकर्षक अन्य अणुओ को अपनी ओर खीचता था। इसका फल यह हुआ कि धारायें उत्पन्न हो गई और गति का जन्म हुआ। जहाँ कही इन धाराओ के कारण कुछ अधिक गैस इकट्ठी हो गई वहाँ गुरुत्वाकर्षक अधिक बढ गया । इससे और गैस इसमे खिच आई। प्रकृति के राज्य मे भी मरे हुए को दो लाते देने का नियम है। फल यह होता है कि छोटे-छोटे पिड बनते है जो बडे पिंड को जन्म देते है। यह बडा पिड अधिकाधिक घनीभूत होने लगता है। कालान्तर मे इस घनीभूत गैस-पिड की रूप-रेखा अधिक स्पष्ट और निश्चित हो जाती है और वह नीहारिका का रूप धारण कर लेता है।

हमने देखा कि नीहारिका का जन्म स्थिर-तत्त्व मे गति और फल-स्वरूप धाराये उत्पन्न होने के कारण हुआ। इन्ही धाराओं के कारण नीहारिका स्थिर नही रह पाती । वह अपनी धुरी पर घूमने लगती है। इससे वह एकदम गोल नहीं रह सकती। पहले तो वह हमारी पृथ्वी

की तरह नारंगी-जैसी चपटी हो जाती है। फिर वह सिकुड़ने लगती है और उसका रूप बराबर बदलता रहता है और वह अधिका-अधिक चपटी होती जाती है। अन्त मे, नीहारिका के किनारे की गैस पिंड के रूप मे घनीभूत हो जाती है और तारों का जन्म होता है। इस तरह रूपहीन नीहारिकायें तारोंवाली नीहारिकाओं मे बदल जाती हैं। ये चपटी नीहारिकायें धुरी पर घूमती रहती है, इसलिए वे चपटी ही रहती है और उनके किनारों के तारे छिटककर महाशून्य मे विलीन नही हो जाने पाते।

अभी ब्रह्माण्ड का जन्म नही हुआ है। यहाँ तक तो प्रक्रिया निश्चित थी। अब इसके बाद जो होता है उसमे होनहार, भाग्य या घटनाचक्र का बड़ा हाथ है। हम नीहारिका के दो तारों को लेते है और ब्रह्माण्ड के जन्म की ओर बढ़ते है। ये तारे पहले इतनी दूर थे कि एक पर दूसरे के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव नही पड़ता था। परन्तु किसी दुर्घटना के कारण एक तारा दूसरे के अधिक पास आगया। अब दोनो तारो के आकार और उनकी परस्पर की दूरी के अनुसार प्रतिक्रियायें शुरू हुई। तारों की सतहों पर ज्वार की लम्बी-लम्बी लहरें उठेगी, और उन लहरो का कुछ भाग खिचकर छोटी-छोटी बूँदो के रूप मे छिटक जायगा। ये बूँदे ग्रह होंगी। हमारी पृथ्वी भी इस प्रकार की छोटी-सी बूँद है जो ऐसी ही परिस्थितियों में हमारे सूर्य से छिटक पड़ी थी। पहले ये बूँदें जलती हुई गैस-मात्र हैं। फिर ये ठंडी होती है और इसके बीच का भाग घनीभूत होकर द्रव का रूप धारण कर लेता है। कालान्तर मे यह द्रव इतना ठंडा हो जाता है कि उसके ऊपर एक ठोस पपड़ी जम जाती है। यह ग्रह का धरातल हुआ।

जब पृथ्वी की पपड़ी और अधिक ठंडी हो गई तो एक नई बात

हुई। यह बात अवश्य ही काल या घटनाचक्र के अधीन थी। ऐसा क्यो हुआ, इस प्रश्न का हम कुछ भी उत्तर नही दे सकते।

अणुसमूह कुछ इस अर्थपूर्ण रचनाक्रम से मिलने लगे कि उस वस्तु का आविर्भाव हुआ जिसे हम जीवन कहते है। हम नही जानते कि जीवन क्या है और किस प्रकार पहले-पहल उसकी सत्ता का जन्म हुआ। अन्य ग्रहों मे जीवन प्रकट हुआ या नही, यह भी हम निश्चित रूप से नही बतला सकते। परन्तु हमारे इस ग्रह पर अवश्य ऐसा हुआ। जीवन की एक नई विशेषता से हम ख़ूब परिचित है—वह नये जीवन को जन्म देता है, उसमे प्रजननशक्ति है। यह बात सृष्टि के अब तक के इतिहास मे नवीन है। जीवन के सम्बन्ध मे एक अद्‌भुत बात यह भी है कि वह निरन्तर अधिक सगठित प्राणी को जन्म देता है।

इस प्रकार सृष्टि-रचना की अन्तिम सीढ़ी हम मनुष्य है। जीवनारम्भ के फलस्वरूप पृथ्वी पर जितने प्राणियो का जन्म हुआ उनमें सबसे अधिक विकसित और पूर्ण हम है। इस तरह हम देखते है कि निरानन्द, निर्विकार महाशून्य मे किसी समय जो चेतनता उत्पन्न हुई थी, वह हम तक आ पहुँची है। परन्तु यह चेतनता हमी पर समाप्त नहीं हो जाती। भविष्य आगे है! अभी हमने महाकाल के राजपथ पर एक चरण भी आगे नही बढ़ा पाया है। अरबो-खरबो वर्षों का लम्बा भविष्य सामने है। जीवन, चेतनता, पदार्थ, सृष्टि—आगे इनका किस प्रकार विकास होगा, इसे कौन भविष्यद्रष्टा बता सकेगा?

इसी से तो कवि ने कहा है—

"अनन्त मृत्यु के गर्भ से अनन्त जीवन का जन्म होता है; "अनन्त जीवन अनन्त मृत्यु में विलीन हो जाता है; "चक्र निरन्तर चलता रहता है; "परन्तु हम नहीं जानते!"

सृष्टि

पिछले अध्यायों मे हमने सौरपरिवार, तारों, नीहारिकाओं और महदाकाश के सम्बन्ध पर काफ़ी प्रकाश डाला है। परन्तु अब एक प्रश्न हमारे सामने आता है। क्या हम उस सृष्टि की कल्पना कर सकते हैं जिसका एक भाग हमारा ब्रह्माण्ड है? उसका रूप क्या है, आकार क्या है और वह किस प्रकार सृष्टि और प्रलय को प्राप्त होती है? वह किस तत्त्व की बनी है? उसका आधार क्या है? क्या उसमे मनुष्य के लिए कोई संदेश छिपा है? आख़िर इस महान् प्रपंच का प्रयोजन क्या है?

ये कुछ प्रश्न है जिनका उत्तर देने का प्रयत्न आधुनिक ज्योतिष-शास्त्र ने किया है। प्रयोगो और वर्षो के अनुभव के बल पर इन उत्तरो की सच्चाई मे बड़ी हद तक उसे विश्वास है। परन्तु नये प्रयोगों और नई खोजो से इन समस्याओ पर ऐसा प्रकाश पड सकता है जिससे इन उत्तरो मे से कुछ को परिवर्तित रूप से रखना पड़े। परन्तु अभी तक मनुष्य ने जितना ज्ञान प्राप्त किया है, उसकी जितनी पहुँच है, उसका ध्यान रखते हुए हम शंका नही कर सकते।

आइए, अब तक के अध्ययन के आधार पर हम इस सृष्टि का निर्माण करने की चेष्टा करे।

हमारे अपने ब्रह्माण्ड मे, संक्षेप मे, इतने भाग है—

हमारा सूर्य!

दस ग्रह।

२६ नक्षत्र।

लगभग १,००० उपग्रह।

लगभग १०,००,००० पुच्छलतारे (धूम्रकेतु)।

अरबो उल्कायें।

राशिप्रकाशतत्त्व *।

फिर हमारा ब्रह्माण्ड ऐसे ही उन अनन्त ब्रह्माण्डो मे से एक है जिनसे मिलकर एक विश्व बनता है। प्रत्येक विश्व मे असख्य तारे और असंख्य तारा-पुंज है। हमारा अपना विश्व आकाशगंगा नाम की नीहारिका मे घिरा हुआ है। हमारी इस आकाशगगावाली नीहारिका के बाहर अनेक नीहारिकाये है जिनमे से प्रत्येक मे अनेक विश्व है। इस प्रकार की कितनी ही नीहारिकाओ के समूह का नाम नीहारिका-पुंज है। ये नीहारिका-पुंज अनन्त आकाश मे भरे पडे है। इस महत् शून्य को जिसमे ये नीहारिका-पुज स्थित है हम "महत् विश्व" अथवा "सृष्टि" कह सकते है। प्रत्येक "सृष्टि" अपने मे सम्पूर्ण है। उसका अपना आकार-प्रकार और रूप है। यह अवश्य है कि वह इतनी बड़ी है कि न हम उसकी कल्पना कर सकते है, न उसका कोई काल्पनिक चित्र खीच सकते है और न मॉडल (रूप अथवा प्रतिरूप) तैयार कर सकते है।

परन्तु क्या हमारी इस सृष्टि जैसी अनेक सृष्टियाँ भी है। सम्भव है, हो, परन्तु जहाँ तक ज्योतिष-शास्त्र के अध्ययन से पता लगता है, वहाँ तक उनके होने-न-होने से हमारी इस सृष्टि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि अनेक सृष्टियाँ हुईं तो वे सब हमारी सृष्टि की तरह अपने मे पूर्ण होगी और वे परस्पर स्वतन्त्र होगी।

भूगोल का पंडित अपने विद्यार्थियो को छोटे पैमाने पर मॉडल बनाकर समझाता है। आइए, सृष्टि को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए

---

*Zodial Light Material

हम भी इसी प्रकार का प्रयत्न करें। यह स्पष्ट है कि हमे अपने माप-दंड को बहुत छोटा रखना होगा। हमारी पृथ्वी सबसे छोटा ग्रह है। इसे हम इकाई मानते हैं। हम यह मॉडल दिल्ली में बनाना शुरू कर रहे हैं। अत: चाँदनीचौक के घंटाघर के स्थान पर हम पृथ्वी का मॉडल रख देते है। पृथ्वी के इस मॉडल के लिए हम लाल घुँघची (गुञ्जा) ले रहे है। अब यदि इस पैमाने पर सूर्य को दिखाना पड़े तो वह व्यास मे एक फुट गोले के बराबर होगा। यदि हमे इसी पैमाने पर सूर्य से पृथ्वी की दूरी स्पष्ट करना पड़े तो हमे इस गोले को घुँघची से सौ फ़ुट दूर रखना होगा। हम अन्तिम ग्रह कुबेर को कहाँ रक्खें ? इस पैमाने पर हमे उसे लाहौर के आस-पास रखना होगा। अन्य सब ग्रहों का स्थान इन दोनो स्थानों के बीच में कही होगा।

अब हमारा सबसे समीप का तारा कहाँ होगा ? वह ढाई लाख मील की दूरी पर है। पैमाने के अनुसार उसे हमें लन्दन मे रखना होगा। यदि हम पृथ्वी के सारे विस्तार को काम मे लाये तो भी हम केवल चार तारे ही रख सकते है।

चलिए, पैमाना बड़ा सिद्ध हुआ। हमे और छोटा पैमाना चाहिए।

अब की बार हम बहुत ही छोटा पैमाना लेते है। हम एक साधारण पिन लिये लेते है और उसके सिर को सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की वार्षिक यात्रा का मार्ग मान लेने है । याद रखिए कि इस यात्रा में पृथ्वी शून्य मे साढ़े अठारह करोड़ मील चल लेती है। हमारा सूर्य कहाँ होगा ? कही भी नही । उसे हम छोटे-से छोटे बिन्दु के रूप मे भी नही दिखा सकते। केवल कल्पना कर लीजिए कि पिन के सिर के बीच में कही इतना छोटा बिन्दु है जिसे केवल दूरदर्शक से ही देखा जा सकता है।

आगे चलिए। हमारे अपने विश्व मे ही अनेक नीहारिकायें हैं जिनमें कुछ मिलाकर ४०,००,००,००,००० तारे हैं। यदि हम अपने छोटे पैमाने पर भी इन तारों की दूरी प्रदर्शित करना चाहें तो भी हमें अमरीका महाद्वीप के क्षेत्रफल को अपनी नीहारिका समझना पड़ेगा। परन्तु इस अपनी नीहारिका के बाहर भी अनेक नीहारिकाये है। मॉडल स्पष्ट करने के लिए हमे प्रत्येक नीहारिका को एक द्वीप का रूप देना होगा। ये द्वीप ३०,००० मील की दूरी पर चारों ओर फैले हुए हैं। जितनी नीहारिकाओ का हमे पता है, उन्हे मॉडल का रूप देने के लिए हमे २०,००,००० ऐसे द्वीप चाहिए, क्योकि ज्ञात नीहारिकाओं की संख्या लगभग इतनी ही पहुँचती है। यदि हम इसमे सफल हुए तो हमारे मॉडल का विस्तार प्रत्येक दिशा मे ४०,००,००० मील होगा। इस पर हम अभी केवल सृष्टि का उतना ही भाग दिखा पाये है, जितनी हमारी सबसे बडी दूरबीन (१००″ व्यास) फ़ोटोग्राफ़ कर सकती है। हमारी दूरबीन की पहुँच २,५०० लाख प्रकाशवर्ष मील है। उसके बाद भी यह सृष्टि सहस्रो पद्म-खर्ब मील तक फैली हुई है।

परन्तु इस बड़ी दूरी का स्पष्ट करना तो अलग रहा, जितना हम दूरदर्शक में देख पाते है, उतने ही भाग को मॉडल के रूप में हम प्रदर्शित नही कर सकते। हमारी कल्पना इस अनन्त विस्तार के सामने स्तब्ध हो जाती है।

तो लाइए, एक बार और भी छोटा पैमाना लेकर मॉडल बनाने का प्रयत्न करें।

इस बार हम अपनी आकाशगंगावाली नीहारिका को दिल्ली माने लेते हैं। दिल्ली नगर का प्रत्येक इंच करोड़ों मील की दूरी का प्रति-

निधित्व करेगा। हमारी अपनी नीहारिका से सबसे निकट जो दो नीहारिकाये हे उन्हें हमे मेरठ के आस-पास कही रखना होगा।

जरा इस पैमाने की तुलना पिछले पैमाने से कीजिए। वहाँ हमने सूर्य के चारो ओर के पृथ्वी के मार्ग को इकाई मानकर उसका मॉडल पिन का सिर रक्खा था। इस बार यह क्षेत्रफल एक इच के ८ हजारवें भाग के व्यास के बराबर है।

इस बार हमारा सारा ब्रह्माण्ड पिन के सिर के बराबर होगा। अब जितने तारे हम नगी ऑख से देख सकते है वह सब इस पिन के सिर के कुछ ही फुट के भीतर आ जाते है।

सबसे बड़े दूरदर्शक के सहारे निश्चित रूप-रेखावाली नीहारिकाओ की सख्या २०,००,००० है। इनमे जो सबसे समीप थी, उन्हे हमारे मॉडल ने दिखा दिया। परन्तु जिस भाग मे हमारी नीहारिका है, सृष्टि का वह भाग कुछ अधिक घना है। अन्य नीहारिकाये इतनी पास नही है। कुछ नीहारिकाये ५० करोड प्रकाशवर्षो की दूरी पर है। उन्हे हमे दिल्ली से ३,१०० मील दूर रखना होगा। फिर कुछ नीहारिकाये ऐसी है जो १४० करोड प्रकाशवर्ष दूर है। इन्हे हमे ८,५०० मील की दूरी पर रखना होगा। अब हमारी पृथ्वी लगभग सारी भर गई। केवल ४,००० अर्द्धव्यास का एक वृत्त बच रहा। अभी-अभी कुछ नीहारिकाये २५० करोड प्रकाशवर्ष दूर पाई गई है। इन्हे हमे दिल्ली मे १५,६०० मील की दूरी पर रखना होगा। परन्तु रक्खे कहाँ? क्या कोई भी स्थान दिल्ली से १५,६०० मील दूर होगा! तब हम जहाँ एक ओर से अवश्य दिल्ली से १५,६०० मील दूर होंगे, वहाँ दूसरी ओर से उसके निकट पहुँच गये होगे क्योकि इतनी बड़ी यात्रा मे पृथ्वी की पूर्ण परिक्रमा का $\frac{3}{5}$ भाग समाप्त हो जाता है। वास्तव

मे जिस वस्तु पर हम अपना मॉडल बना रहे है, अर्थात् पृथ्वी, उसने हमे असफल कर दिया। हमे कोई ऐसी चीज चुननी चाहिए थी जिस पर आवश्यकता पडने पर हम सीधे चलते ही रहते, और जिस स्थान से हमने चलना शुरू किया था, उससे निरन्तर दूर ही होते जाते।

अब यह स्पष्ट हो गया कि हम इस सृष्टि का कोई भी मॉडल नही बना सकते। हम असफल रहे।

मॉडल बनाने के इस प्रयोग से हम सृष्टि के आकार का अनुमान कर सकते है। हमे अब सृष्टि के आकार के सम्बन्ध मे ही लिखना चाहिए, परन्तु एक विशेष कारण से पहले हम सृष्टि के रूप की बात चलायेगे।

क्या यह सृष्टि अनन्त और असीम है? यदि यह सृष्टि अनन्त और असीम नही है, तो इसका रूप क्या है?

अनन्त और असीम सृष्टि का कोई भी चित्र मनुष्य का मस्तिष्क नही बना सकता। अनन्तता और असीमता का ग्रहण करना मनुष्य के ससीम मन के लिए नितान्त असम्भव है। परन्तु मनुष्य का मन ससीम सृष्टि की भी कल्पना नही कर सकता क्योंकि फिर प्रश्न यह उठता है कि इस ससीम सृष्टि के बाहर क्या है?

आधुनिक ज्योतिषी इस सृष्टि को सीमावान् बन्द शून्य-पिंड की भाँति मानने लगे है। उनका कहना है कि जिस प्रकार पृथ्वी के धरातल की सीमा है, उसी तरह सृष्टि की भी सीमा है। यदि हम दिल्ली से पूर्व या पश्चिम की ओर चलें और बिना मुड़े चलते ही रहे तो फिर लौटकर दिल्ली आ जायँगे। इसी प्रकार यदि हम अपनी पृथ्वी से चलकर अनन्त आकाश में सीधे बढ़ते जायँ तो

लौटकर फिर इसी ग्रह पर आ जायँगे। इस प्रकार अब हम इस सृष्टि के पूर्ण चित्र की कल्पना कर सकते हैं।

परन्तु यह बात सिद्ध कैसे हुई ? इस बात को किसी ज्योतिषी ने सिद्ध नही किया। इसको सिद्ध करनेवाले प्रोफ़ेसर आईसाइन हैं। उनके प्रसिद्ध सापेक्षवाद के सिद्धान्त को यदि सत्य स्वीकार किया जाय तो फिर पृथ्वी की सतह को उसी प्रकार अपने ऊपर मुड़ जाना पड़ेगा जिस प्रकार नारंगी का छिलका अपने ऊपर मुड़ा होता है। हम जानते है, पृथ्वी के सम्बन्ध में यह बात सत्य है। महाशून्य भी अपने ही ऊपर मुड़ता चला गया है। अन्त मे वह पृथ्वी की तरह एक गोलाकार पिड का रूप धारण कर लेता है। परन्तु पृथ्वी की सतह जिस तरह पपड़ी (ऊपर के धरातल) से बँधी हुई है उस तरह की बात आकाश के सम्बन्ध मे नही लागू होगी। एक तरह मे उसका कही अन्त नही होता, अर्थात् हमारी सृष्टि को कोई धरातल बाँधे हुए नही है।

क्या हम इस सृष्टि के बाहर जा सकते हैं ? यह अच्छा प्रश्न है। यदि हम पृथ्वी मे एक सुरंग खोदें और खोदते ही चले जायँ तो हम दूसरी ओर आकाश में निकलेंगे। यदि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण हमे उसके केन्द्र की ओर न खींचे तो हम पृथ्वी को छोड़कर बाहर आकाश मे जा सकते है। परन्तु क्या इस तरह की बात इस गोलाकार सृष्टि के सम्बन्ध मे भी संभव है ? नही, यह असम्भव है। यदि सृष्टि पृथ्वी के धरातल की तरह है; यह कभी भी समाप्त नही हो सकती और हम कितना ही चलें किन्तु आकाश के बाहर नही जा सकते।

आधुनिक वैज्ञानिक साबुन के बुलबुले को सृष्टि का रूपक मानता है। यदि हम एक नलकी लें और उसके भीतर उस समय फूँक मारे जब उसका दूसरा सिरा साबुन की झागों मे पड़ा हुआ हो तो नलकी

के सिरे पर एक बडा बुलबुला बनने लगता है। धीरे-धीरे यह बुलबुला गोल हो जाता है। हमारी सृष्टि साबुन के इस बुलबुले के समान है। कल्पना कीजिए कि हम और जिन पदार्थो से किसी प्रकार परिचित हो सके है, वे सब इस पतली साबुन की झिल्ली मे समाये हुए है। इस पतली झिल्ली को छोडकर उसके बाहर या भीतर के सम्बन्ध में हम कोई भी कल्पना नही कर सकते। सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार शून्य इस बुलबुले की झिल्ली की भाँति ही असीम है।

अब ज़रा कल्पना कीजिए कि बुलबुलेवाली नलकी के उस सिरे पर कोई लडका बराबर फूँक भर रहा है। बुलबुला गुब्बारे की तरह फूलता जायगा। बेल्जियम देश के एक वैज्ञानिक का कहना है कि हमारी सृष्टि भी इसी तरह आकार मे बढ़ रही है। जैसे-जैसे यह विश्व फैलता जाता है, वैसे-वैसे पिड—नीहारिकाये, तारे, सौरमंडल आदि—परस्पर दूर होते जाते है।

साथ ही जिस गति से यह विश्व फैलता है, वह लगातार बढ रही है। इन सब बातों का पता गणित मे लगा है। परन्तु अभी कुछ समय हुआ, दूरदर्शक में कुछ नीहारिकाये अत्यन्त तीव्र गति से हमसे दूर होती हुई दिखलाई पड़ी है। हमारे सबसे अधिक तीव्रगामी वायुयान की गति ४०० मील प्रतिघंटा से अधिक नही है। ये नीहारिकाये इससे २,००,००० गुनी अधिक तेजी से हमसे पीछे हट रही है।

परन्तु, बहुत सम्भव है, कि नीहारिकाओं में जो कम्पन दीख पड़ता है और जिससे हम यह हिसाब लगाते है कि वे इतनी गति से बढ़ रही हैं, उसका कारण कुछ ऐसा हो जिसकी हमने कल्पना न की हो। यदि हमारा विश्व इतनी तीव्र गति से फैलता होता तो जिस रूप में तारों को हम आज देखते है, उस रूप में उन्हें आये हुए अभी उतना

समय न हुआ होता जितना उनकी आयु के सम्बन्ध में खोज करने पर सिद्ध हुआ है। ज्योतिषियो का विश्वास है कि यद्यपि यह सृष्टि इस तीव्र गति से नही फैल रही है जितनी इन नीहारिकाओं के अध्ययन से जान पड़ती है, परन्तु वह फैल अवश्य रही है। सम्भव है, थोडे ही समय मे वैज्ञानिक इस सम्बन्ध मे किसी निश्चित मत पर पहुँच जायँ।

अब हम सृष्टि के आकार पर ध्यान देगे।

ज्योतिष-विशारदो का कहना है कि सृष्टि का आकार बहुत बडा है। यदि यह सृष्टि फैल रही है तो जब उसने फैलना आरम्भ किया होगा तब वह इतनी बड़ी रही होगी कि प्रकाश को उसका चक्कर लगाने मे ८,०० करोड प्रकाशवर्ष लगेगे। अब तक यह सृष्टि बहुत फैल चुकी है और इसलिए उसका आकार इससे कहीं अधिक होगा। अब कदाचित् प्रकाश को उसका चक्कर लगाने में ५०,००० करोड वर्ष लगगे।

चाहे यह सृष्टि फैल रही हो या नही, यह फिर भी मानी हुई बात है कि उसकी परिधि ८०० करोड प्रकाशवर्ष और ५०,००० करोड प्रकाशवर्ष के बीच मे कही होगी। हम न ८०० करोड़ प्रकाश-वर्षो की कल्पना कर सकते है, न ५०,००० करोड़ प्रकाशवर्षों की और न इन दोनों संख्याओ के बीच की किसी संख्या की। अभी तक अपने सबसे बड़े दूरदर्शक मे हम आकाश मे २५ करोड़ मील प्रकाशवर्ष तक देख सके है। इस संख्या से यह स्पष्ट है कि इतनी चेष्टा करने पर भी हम शून्य का एक बहुत छोटा अंश देख पाते है।

इस सृष्टि का विस्तार इतना अधिक है कि इसमे असंख्य नीहारि-कायें, तारे, ग्रह-उपग्रह होते हुए भी यह ख़ाली पड़ी है। कल्पना कीजिए कि हमारे भारतवर्ष में केवल दो मधु-मक्खियाँ उड़ रही हों। क्या हम

यह कहेंगे कि हमारा देश भरा हुआ है या हम यह कहेगे कि वह खाली है। बस, हमारी सृष्टि भी पिंड-तत्त्व से इतनी ही भरी हुई है। अधिक कुछ भी नही।

जहाँ तक हमने इस सृष्टि का अध्ययन किया है उसके आधार पर हम कह सकते है कि इस विश्व के तत्त्व का अधिकाश भाग तारों के रूप मे घनीभूत हो चुका है। इन तारों की सख्या अनन्त है। ससार के सभी समुद्रतटों पर पड़े हुए रेत के कणो की संख्या क्या होगी ? इतनी ही सख्या तारो की है। जब हम यह बात ध्यान मे लाते हैं कि छोटे-से-छोटे तारे का भार हमारी पृथ्वी से दस हजार गुना अधिक है, तो फिर असंख्य-असंख्य तारों के भार की कल्पना कैसे हो ?

यह सृष्टि कब बनी, इस सम्बन्ध मे हम कुछ नही कह सकते। केवल एक दृष्टान्त देकर हम समझाने की चेष्टा करेगे। जब हमारी पृथ्वी पर पहले मनुष्य ने जन्म लिया होगा तो यह सृष्टि इसी प्रकार रही होगी। जब इस पृथ्वी पर अन्तिम मनुष्य के दर्शन होंगे तो भी यह इसी प्रकार बनी रहेगी; कोई परिवर्तन नही ! हमारी जाति के जीवन का अरबो-खरबो वर्षों का इतिहास इस सृष्टि के इतिहास के सम्मुख पलक झपकने के समान है।

परन्तु हम इतना समझ गये है कि हमारी सृष्टि का मूल-कारण आकाश-तत्त्व ही है। जिस पदार्थ को हम नीलिमा के रूप में देख रहे हैं वह अति सूक्ष्म पदार्थ-पुंज अनन्त देश में अपार सागर की तरह फैला है। उसी में एक विशेष प्रकार का आन्दोलन होता है। फलत: आवर्त्त बन जाते हैं। प्रत्येक आवर्त्त के बीच में नाभि होती है। किनारो की तरफ़ यह पदार्थ-पुज घना हो जाता है और अन्त में आवर्त्त-

कुण्डली का रूप धारण कर लेता है। अब भी आकाश में अनियत्रित रूप मे इधर-उधर बिखरे हुए बादल दीख पड़ते है। इन्ही बादलो मे नई नीहारिकाओ का निर्माण हो रहा है। नीहारिका का आकाश-पदार्थ धीरे-धीरे स्थान-स्थान पर एक बिन्दु के रूप में घनीभूत होता गया। इस प्रकार तारो का जन्म हुआ। प्रत्येक तारा (नक्षत्र) एक ब्रह्माण्ड का नायक बन गया। इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्ड बने और उनकी परिक्रमा का क्षेत्र आकर्षण-नियम के अनुसार निश्चित हो गया। इस प्रकार निराकार, निरलेप, निर्द्वंद आकाश से कुण्डलाकार नीहारिकाओ का जन्म हुआ; इन नीहारिकाओ के भीतर विश्व बने और उनके भीतर अनेक ब्रह्माण्डो की उत्पत्ति हुई। समय आने पर ब्रह्माण्डो और विश्वो का नाश हो जाता है। शेष रह जाता है केवल आकाश-तत्त्व। इस प्रकार स्थिति और प्रलय की लीला चलती रहती है।

परन्तु इस अध्याय के प्रारम्भ में हमने जो प्रश्न किये थे उनमें से अनेको का उत्तर अब भी नही मिला। एक सबसे बड़ा प्रश्न रह ही गया—क्या सृष्टि मे मनुष्य के लिए कोई संदेश छिपा है? आखिर इस महान् प्रपंच का प्रयोजन क्या है?

कौन जाने, कोई संदेश है या नही। जो प्रपंच स्वयं इतना बड़ा है कि महान्-से-महान् मस्तिष्क भी उसे पूर्णतः ग्रहण नहीं कर सकता, उसके प्रयोजन की बात कैसे समझी जाय। सम्भव है, कोई प्रयोजन हो और मनुष्य कालान्तर मे उसका उद्घाटन कर सके। यह भी सम्भव है, कोई प्रयोजन हो ही नही। हम तो इतना ही कह सकते है कि सृष्टि का प्रपच आश्चर्यजनक है, अद्भुत है और इस आश्चर्य का जनक आकाश है।

वेधशालायें और सिद्धवेधक

ज्योतिष-विद्या का इतिहास कितना प्राचीन है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। योरप के प्राचीन लेखको ने बैवलिनवालो को ज्योतिष-शास्त्र का प्रवर्त्तक लिखा है। ईसवी सन् से १,००० वर्ष पूर्व के कुछ ग्रथ मिलते है। उनसे पता लगता है कि बैवलिन के ज्योतिषी ग्रहों-तारों आदि के सम्बन्ध मे थोडा-बहुत ज्ञान रखते थे। उन्होने आकाश मे दृश्यमान नक्षत्रो को अनेक भागो मे विभक्त किया था। इन भागों के नाम उन्होने अपने देवताओ के गुणो पर रक्खे थे। ईसवी सन् १,००० वर्ष पूर्व अकैडियनो ने बैवलिन पर अधिकार कर लिया। उन्होंने बैवलिन-निवासियों से अनेक बाते सीखी। परन्तु उन्होंने नक्षत्रों के नाम स्वतन्त्ररूप मे रक्खे और उन्हे श्रेणीबद्ध करने की एक अद्भुत रीति निकाली जो भारतीय राशि-कल्पना से बहुत कुछ मेल खाती है। उन्होने परस्पर निकटवर्त्ती नक्षत्रो को एक-एक श्रेणी में रखकर प्रत्येक पुंज का नाम किसी प्रचलित पशु आदि पर रक्खा और उस पुंज मे उसके आकार की कल्पना की। जब अलेक्ज़ेंड्रिया मे विश्व-विद्यालय स्थापित हुआ तो बैवलिन का ज्योतिष मिस्र देश मे फैल गया। मिस्र से ज्योतिष यूनान गया। परन्तु उस समय तक पूर्व मे आकाश का ज्ञान भली भाँति हो चला था। चीन के प्राचीन लेखको का कहना है कि नक्षत्रो की प्रथम चर्चा ३,००० ईसा पूर्व मे महाराज फूही के समय मे आरम्भ हुई।

यूनान मे इस विद्या का विशेष विकास हुआ। अरिस्टिलस (Aristyllus) ने प्रधान नक्षत्रो के स्थानों को निश्चित किया और ऐरिस्टार्कस (Aristorchus) ने सूर्य और चन्द्रमा की दूरी

निकाली। इसी ने पृथ्वी की दोनो गतियो का पहली बार आविष्कार किया। इसने कहा कि पृथ्वी अपने अक्ष (Axs) पर एक दिन में चक्कर कर लेती है और उसकी सूर्य की परिक्रमा १ वर्ष मे समाप्त होती है। एराटास्थेनीज़ (Ærotosthenes) ने २३० ई० पूर्व मे पृथ्वी का परिमाण निर्धारित किया। हिपारकस (Hipparchus) ने क्रमानुसार नक्षत्रो की सूची तैयार की। सन् १५० मे टालेमी (Ptolemy) ने भी महत्त्वपूर्ण काम किया। दूसरी शताब्दी से लेकर, आठवी शताब्दी तक योरप मे ज्योतिष विद्या-सम्बन्धी ज्ञान की विशेष वृद्धि हुई। गणित ज्योतिष अरबों के हाथ में आया। इसी काल में भारतवर्ष में फलित और गणित ज्योतिष का खूब प्रचार हुआ। ईसा की १३वी शताब्दी तक भारतवर्ष गणित ज्योतिष में सारे ससार में प्रथम रहा। परन्तु धीरे-धीरे उसने अपनी शक्तियाँ फलित की ओर लगा दी। आर्यभट्ट (४७० सन्), लल्ला (४९२), वाराहमिहिर (५०५), ब्रह्मगुप्त (५९८-६६०), श्रीधर (८५६), महावीर (८५०), आर्यभट्ट द्वितीय (९७०) और उत्पल (९७०) महान् गणितज्ञ और ज्योतिषी हुए। भास्कराचार्य ने २७ नक्षत्रों और नवग्रहों के सम्बन्ध मे विशेष गणनायें उपस्थित कीं।

बहुत प्राचीन समय की वेधशालाओं के सम्बन्ध मे हम कुछ भी नहीं जानते। कदाचित् पहला यंत्र धूपघड़ी हो, जिसमे एक सीधे डडे की परछाईं-द्वारा समय की नाप की जाती थी। छाया की लम्बाई के घटने-बढ़ने से सूर्य की गति के सम्बन्ध में ज्ञान किया जा सकता था। परन्तु इसके अनन्तर ऐसे यंत्रों का आविष्कार अवश्य हो गया होगा जो इतने निश्चित थे कि इनके द्वारा आकाश-पिंडों के सम्बन्ध मे छोटी-मोटी गणना उपस्थित की जा सके।

योरप मे पहली वेधशाला सन् १४७१ में जर्मनी के नूरेवर्ग प्रान्त में रीगिया माण्टन्स (Regiomontanes) और वाल्टर (Walter) ने स्थापित की। सन् १४७३ मे निकोलस कोर्निकस का जन्म हुआ। इन्होने सूर्यमंडल का ठीक-ठीक ज्ञान उपस्थित किया। उनके बाद टाइकोब्रेह (Tycho Brahe) ने गणित ज्योतिष मे विशेष परिश्रम किया। टाइको का जन्म सन् १५४६ मे हुआ था। २१ अगस्त १५६० मे योरप मे सर्व-सूर्यग्रहण पड़ा। इससे प्रभावित होकर टाइको ने ज्योतिष का अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १५७६ मे डेनमार्क के राजा ने डेरनवर्ग नामक स्थान पर उसके लिए एक वेधशाला बनवा दी। २० वर्ष तक टाइको ने यही काम किया। उस समय तक दूर-दर्शक का आविष्कार नही हुआ था और इसलिए इस आविष्कारक को अपनी खोजे उसकी सहायता के बिना ही करनी पड़ीं। १५६४ मे इटली के पिसा नगर मे गैलिलियो का जन्म हुआ। १६०९ मे उसने पहली बार दूरदर्शक का मुँह आकाश की ओर किया।

गैलिलियो का दूरदर्शक रंग-दोषरहित नही था। उसके बाद अनेक दूरदर्शक बने। वे भी इस दोष से रहित नही हो सके। यदि दूरदर्शक लम्बा बनाया जाता तो यह दोष कुछ कम अवश्य हो जाता। इसी से हमे उस समय के अनेक लम्बे दूरदर्शकों का पता लगा है।

धीरे-धीरे दूरदर्शक इतने लम्बे बनने लगे कि उनका प्रयोग करना कठिन हो गया। सन् १६८० मे एक ज्योतिषी ने रायल सोसाइटी को इतना बड़ा दूरदर्शक भेंट किया कि जिसकी फ़ोकल लम्बाई १२३ फ़ुट थी। इतने लम्बे दूरदर्शकों का प्रयोग कितना कठिन होगा, यह बात सहज मे ही समझी जा सकती है। कदाचित् इसी कठिनाई को ध्यान

मे रखकर न्यूटन ने १६६८ मे एक नये प्रकार का दूरदर्शक बनाया। यह दूरदर्शक दर्पणमुक्त था।

परन्तु न्यूटन के आविष्कार को आगे बढाने और पूर्ण करने का श्रेय हरशेल को प्राप्त है। उस समय दर्पण बनाना बड़े परिश्रम का काम था और साथ ही अत्यन्त व्ययसाध्य भी था। बाज़ार मे जो दर्पण मिलते थे, वे अत्यन्त छोटे होते थे और उनसे अधिक सहायता नही मिल सकती थी। हरशेल दर्पण बनाने मे लग गया। अनेक दिन-रात के परिश्रम के बाद एक दिन वह २ फुट व्यास का दूरदर्शक बनाने मे सफल हुआ। इसी दूरदर्शक मे हरशेल ने उरण नाम के ग्रह का पता लगाया था। परन्तु हरशेल इस सफलता के वाद चुप नही बैठा। कुछ वर्षो के बाद उसने ४ फुट व्यास का दूरदर्शक बना लिया। इसके द्वारा उसने शनि के दो नये उपग्रह देखे। इसके बाद अनेक अधिक बड़े दर्पण बने और दूरदर्शक की शक्ति में वृद्धि होती रही। रॉस का अर्ल एक ६ फ़ुट व्यास का दूरदर्शक बनाने मे सफल हो गया, परन्तु वह इतना बड़ा था कि उसको एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाना असम्भव था। यही नही, उसे स्थापित करने मे भी बड़ी कठिनाई हुई।

तालयुक्त दर्पण ने भी धीरे-धीरे उन्नति कर ली। १७५२ मे डॉलैण्ड ने रंग-दोष-रहित ताल बनाने की एक रीति का आविष्कार किया। इस प्रकार आधुनिक तालयुक्त दूरदर्शकों का जन्म हुआ। परन्तु बहुत समय तक अधिक बड़े रंग-दोष-रहित ताल नही बन पाये। इसलिए तालयुक्त दूरदर्शक दर्पणयुक्त दूरदर्शक की प्रतियोगिता मे पूरा नहीं उतरता था। उस समय इस बात की आवश्यकता थी कि अच्छा शीशा बनाया जाय। स्विट्ज़रलैंड के एक कारीगर गुनैण्ड ने इस ओर

ध्यान दिया। १८२३ में वह १८ इच का अच्छा शीशा बनाने में सफल हो गया। गुनैण्ड के शीशे से प्रसिद्ध वैज्ञानिक फाइनहोफर ने १० इंच तक के दूरदर्शक बनाये। उसके उत्तराधिकारियों के बनाये हुए दूरदर्शक रूस और अमरीका तक पहुँचे।

अब ताल बनाने का काम आविष्कारको के हाथ मे से कारखाने-वालो के हाथ में आगया था। इसलिए उन्नति की गति अधिक तीव्र हो गई।

१८६० मे क्लार्क ने १० इच का दूरदर्शक बनाया। यह दूरदर्शक अमरीका के एक विश्वविद्यालय ने खरीद लिया। परन्तु जब यह कार-खाने मे ही था, तभी इसके द्वारा यह पता चला कि लुब्धक वास्तव मे युगल तारा है। इस आविष्कार ने इस दूरदर्शक को अत्यन्त प्रसिद्ध कर दिया। परन्तु दूरदर्शको की उन्नति करने मे एक होड लगी हुई थी। दस वर्ष बाद ही टॉमस कुक ने २५ इंच व्यास का दूरदर्शक बनाकर उसकी प्रसिद्धि पर आघात कर दिया। यह दूरदर्शक अब कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालय मे है।

इसके थोडे ही दिनों बाद एलबन क्लार्क ने २६ इच का दूरदर्शक बनाया। इसके द्वारा मंगल के दो ग्रहो का पता लगा। १८८६ मे इसी आविष्कारक ने ३६ इंच का दूरदर्शक बना लिया। परन्तु अभी उसे और अधिक श्रेय मिलना था। १८९२ मे शिकागो नगर (अमरीका) के एक करोड़पति के आग्रह से क्लार्क ने ४० इंच व्यास का दूरदर्शक तैयार किया। इस दूरदर्शक का ताल आज भी सबसे बडा ताल है।

१९०५ मे ससार की सबसे बडी वेधशाला (माउंट विलसन-वेधशाला) की स्थापना हुई। यहाँ एक १०० इंचवाला दूरदर्शक है जो ससार मे सबसे बड़ा है। एक अन्य ६० इच का दर्पणयुक्त दूरदर्शक भी है। १९१८

मे विक्टोरिया मे ७२ इंचवाला दूरदर्शक आरोपित किया गया। इन सभी दूरदर्शकों ने आकाश के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान को इतना अधिक बढा दिया है कि आज जो बातें हम जानते है वह चामत्कारिक कही जा सकती है। संसार का तीसरा बड़ा दूरदर्शक ६० इच व्यास का है। यह भी विलसन पहाड पर है। यरकिज-वेधशाला मे ४० इचवाला दूरदर्शक है। लिक-वेधशाला के दर्पण का व्यास केवल ३६ इच है। अभी कुछ समय हुआ, ओहियो-विश्वविद्यालय मे ६१ इञ्च का दर्पणयुक्त दूरदर्शक स्थापित किया गया है।

इन बड़े दूरदर्शकों की तुलना मे भारतवर्ष के दूरदर्शको का कही भी स्थान नहीं होगा। अभी हमारे देश मे वेधशालाये ही नही बनी है। मद्रास और शिमले मे सरकारी वेधशालायें है जो अधिकतर स्वतत्ररूप से काम नहीं करती। उन्होंने ज्योतिष के पुनरुत्थान के लिए कुछ भी काम नही किया है। देशी राज्यों मे केवल हैदराबाद की अपनी वेधशाला (निज़ामिया वेधशाला) है जिसके दूरदर्शक का व्याम केवल १५ इंच है। यह हमारा सबसे बड़ा दूरदर्शक है !

वेधशाला की उपयोगिता में उस स्थान के चुनाव का बडा हाथ होता है जहाँ वह खड़ी की जाती है। उसके लिए ऐसा स्थान चुनना आवश्यक है जहाँ वायु पूर्णतया स्वच्छ और स्थिर हो। यह सचमुच बड़ा कठिन काम है। यही कारण है कि अधिकाश अच्छी वेधशालायें पहाड़ की चोटियों पर बनी हैं। संसार की सबसे बडी वेधशाला माउंट विलसन पर्वत की इतनी ऊँची चोटी पर है कि वहाँ तक बादल भी नही पहुँच सकते। लिक-वेधशाला हैमिल्टन पहाड़ पर हैं। यह पहाड ४,२०० फ़ुट ऊँचा है। इतनी उँचाई तक सड़क बनाने और वहाँ तक सामान और मनुष्यों को ढोने में बड़ा धन व्यय हो जाता है। विलसन-वेध-

शाला तक सड़क बनाने में ३,००,००० रुपये खर्च हुए थे। फिर भी कई बार यंत्रों से भरी हुई गाड़ियाँ गिरकर टूट गई है। बड़े-बड़े दूरदर्शको का इतनी उँचाई पर पहुँचाना सचमुच जादू का काम है।

परन्तु ज्योतिषियों की कठिनाई यही समाप्त हो जाये, यह बात नही। कभी-कभी स्वच्छ वायु की खोज मे उन्हे सातो समुद्र लाँघने पड जाते है। तापक्रम प्रायः एक-सा हो। साल भर मे दो-चार इच से अधिक पानी नही बरसे। स्थान समुद्रतल से ७-८ हज़ार फीट ऊँचा हो। वहाँ वैज्ञानिक प्रयोगो और आवागमन की सुविधा हो। ऐसा है वह आदर्श स्थान जिसे वर्तमान ज्योतिषी प्राप्त करना चाहता है। ऐसे स्थान को ढूँढ निकालना हँसी-खेल नही। कही वादल-पानी अधिक है, कही हवा स्वच्छ नही है, कही आवागमन की असुविधा है। परन्तु इन सभी कठिनाइयो को लाँघकर मनुष्य ने जो महान् वेधशालायें खड़ी की है, वे वास्तव मे 'आठवाँ आश्चर्य' है।

वर्तमान समय की वेधशालाओ का रूप भी विचित्र होता है। इसकी दीवारें वृत्त के रूप मे होती हैं। यही वेधशाला का प्रधान भाग है। दीवारो के ऊपर गुम्बद की तरह अर्द्धवृत्त छत रक्खी होती है। यह छत वास्तव में एक नहीं होती। इसमें नारंगी की तरह फाँके रहती हैं। ये फाँकें खोली और बन्द की जा सकती है। जितना बडा झरोखा हमें चाहिए, उतना बडा झरोखा हम अपने सिर पर खोल सकते है और आकाश के प्रत्येक भाग की ओर अपना दूरदर्शक घुमा सकते हैं। छत के गुम्बद को चक्कर की तरह घुमाया भी जा सकता है जिससे उसका बातायन किसी भी ओर खुल सके। वेधशाला का प्रमुख यंत्र दूरदर्शक होना है। यह एक ऊँचे स्थान पर स्थापित होता है और इसका सम्बन्ध एक मशीन से होता है जो घूम सकती है। इस मशीन के घूमने के साथ दूरदर्शक भी घूम जाता

है। स्वयं दूरदर्शक मे भी एक ऐसा यंत्र लगा होता है जिससे उसे थोडी भी मात्रा में ऊँचा-नीचा किया जा सके अथवा उसके केन्द्र पर घुमाया जा सके।

इस प्रकार स्थापित दूरदर्शक को "नाडी-दर्शक" ("Equatorial") कहते है। इसमे यह सुगमता रहती है कि जैसे-जैसे तारा आकाश के एक भाग को पार करके आगे बढता जाये, वैसे-वैसे दूरदर्शक को इस प्रकार घुमाया जा सकता है कि वह उसके क्षेत्र से निकल न जाये। तारा प्रतिदिन अपने स्थान से थोड़ा हट जाता है। इसलिए दूरदर्शक की नलकी मे एक यंत्र ऐसा लगा रहता है जो उसे निश्चित गति से हटाता रहता है। यदि दूरदर्शक को एक बार किसी तारे की ओर लगा दिया जाय तो वह तारा फिर उसके क्षेत्र के बाहर नही जा सकता। इस दूरदर्शक में एक अन्य बिजली का यंत्र भी लगा रहता है जिसका सम्बन्ध वेधशाला के घंटे से होता है। इसके सहारे से प्रत्येक घटे के हिसाब से दूरदर्शक की गति बाँधी जा सकती है।

(१) दूरदर्शक—ज्योतिष के प्रयोगो के लिए जो दर्शक काम मे लाये जाते है, वे दो प्रकार के होते है। एक प्रकार के दूरदर्शक वे होते है, जिनमें प्रतिबिम्ब ताल के द्वारा बनता है। दूसरे प्रकार के दूरदर्शको के बिंब का निर्माण दर्पण के द्वारा होता है। इन्हें क्रमशः तालयुक्त और दर्पणयुक्त दूरदर्शक कहते है।

तालयुक्त दूरदर्शक का आविष्कार पहले-पहल १६०८ मे लीपरशे (Lippershey) ने किया। यह व्यक्ति मिडिलवर्ग मे ऐनक का काम करता था। परन्तु उसको उन्नत करके उसका ज्योतिष मे प्रयोग पहली बार गैलिलियो ने किया। ये दूरदर्शक आजकल के सैरबीनों (Operaclasses) की रीति पर बने थे। इनमे वस्तु बहुत अधिक बड़ी नही दिखलाई पड़ती

थी। प्रतिबिम्ब की रूपरेखा भी स्पष्ट नही दीख पडती थी और उसमे रङ्ग भी आ जाते। १६११ मे केलेपर ने सकेत किया कि ऐसे दूरदर्शक बनाये जायॅ जिनमे दो उन्नतोदर ताल लगे हो। परन्तु ऐसे दूरदर्शकों का निर्माण कई वर्ष बाद हुआ। दर्पणयुक्त दूरदर्शक का निर्माण पहले-पहल १६७० मे न्यूटन ने किया। रंग दूर करने के लिए वर्णनाशक (Achromatic) ताल या आविष्कार १७३३ मे चेस्टरमूर हाल (Chestermoer Hall) ने किया परन्तु उसका प्रथम बार प्रयोग १७५८ मे डॉलैंड-द्वारा हुआ।

दूरदर्शक यत्र का काम दूर की वस्तुओ को स्पष्ट रूप देना है। यह बात उसके नाम से ही समझ में आ जाती है। वास्तव मे इस यंत्र मे तीन काम लिये जाते है—

(१) यह दूर की वस्तुओं को समीप, स्पष्ट और बडी बनाकर दिखलाता है। जिन नक्षत्रों के प्रकाश इतने मंद है कि वे नगी ऑख से किसी भी प्रकार दिखलाई नही पड़ते, वे नक्षत्र इस यत्र के सहारे देखे जा सकते है। यही नही, जिन नक्षत्रो को दूरदर्शक के सहारे देखना कठिन है, उनके भी प्रकाश-चित्र उतार लिये जा सकते है, यद्यपि इस काम मे अधिक समय लगता है।

(२) रश्मि-विश्लेषक आदि यंत्रो के लिए दूर के नक्षत्रो का प्रकाश चाहिए। उन प्रकाश को दूरदर्शक के द्वारा ही एकत्रित किया जाता है।

(३) इस यंत्र की सहायता से किसी वस्तु की दिशा भी स्थिर की जा सकती है।

दूरदर्शक में वस्तु के आकार को बड़ा कर देने के गुण से हम सभी परिचित हैं। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि इस यंत्र के

द्वारा तारों का आकार भी बड़ा दिखलाई देता है। ऐसा नही होता। तारे बिन्दु-मात्र है। उनका आकाश शून्य समझना चाहिए। जिस प्रकार शून्य से किसी भी अंक को गुणा करने पर उत्तर में सदैव शून्य ही आता है, उसी प्रकार शून्य को कितने ही बड़े दूरदर्शक के सहारे देखा जाय, वह शून्य ही रहता है। हाँ, एक बात अवश्य होती है। जहाँ अन्य पिडो का प्रकाश दूरदर्शक में देखने से कम हो जाता है, वहाँ नक्षत्र का प्रकाश अधिक हो जाता है। दूरदर्शक की सहायता से वे तारे भी खूब स्पष्ट और चमकीले दिखलाई पड़ने लगते है जो आँख मे जरा भी दिखलाई नही पड़ते। यह इसलिए होता है कि दूरदर्शक मे प्रकाश इकट्ठा हो जाता है। जितना बड़ा दूरदर्शक होगा, वह उतना ही अधिक प्रकाश एकत्रित करेगा। ४० इंचवाले दूरदर्शक से तारा आँख की अपेक्षा १४० सहस्रगुना चमकीला दिखलाई पड़ता है।

दूरदर्शक दो प्रकार के होते है, यह हम पहले बतला चुके है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस यंत्र के सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग इसके ताल तथा दर्पण है।

दूरदर्शक की ताल उन्नतोदर होती है। उससे छोटी वस्तु बहुत बड़े आकार की दिखलाई पड़ती है। इसी लिए बूढ़ों मनुष्यों के चश्मो मे इसी प्रकार के शीशे लगे होते है। चित्र से यह समझ मे आ जायगा कि ऐसा क्यों होता है।

किताब आदि पढने के लिए जो छोटे दूरदर्शक बाज़ार मे मिलते है उनमे और ज्योतिष-सम्बन्धी दूरदर्शकों मे कुछ भी अन्तर नही है। अन्तर केवल डील-डौल का है। वेधशालाओं में जिन तालो का प्रयोग होता है, वे साधारण तालों से १००-५० गुना अधिक बड़े होते हैं।

पीछे हमने ताल के रंग-दोष का उल्लेख किया है। यह इस प्रकार

है कि जब हम ताल के द्वारा किसी वस्तु को देखते है तो उसकी मूर्ति भद्दी आती है। इस मूर्ति के किनारे रंगीन होते है। इन्द्र-धनुष मे जिस प्रकार के सात रंग दिखलाई पड़ते हैं, उसी प्रकार के रंग वस्तु को घेरे हुए जान पड़ते है। इससे वस्तु का चित्र लेने अथवा उसको बेध करने मे बड़ी कठिनाई पड़ती है। हमने यह भी उल्लेख कर दिया है कि यह कठिनाई बहुत समय में दूर हुई। इसके कारण वर्षो तक दूरदर्शक मे अधिक लाभ नहीं उठाया जा सका।

अन्त मे वैज्ञानिको ने एक तरकीब निकाल ही ली। उन्होने क्राउन शीशे के उन्नतोदर ताल के साथ फ़्लिट शीशे का नतोदर ताल जोड दिया। इस प्रकार रंग-दोष बहुत कुछ कम हो गया और दोनो तालों ने मिलकर उन्नतोदर का काम किया। धीरे-धीरे यह आविष्कार और अधिक विकसित किया गया। आजकल प्रत्येक दूरदर्शक मे रंगदोष-रहित ताल का ही प्रयोग होता है। फिर भी थोड़ा-बहुत रंग-दोष रहता ही है। हाँ, तीन तालो का मेल बिठाकर इस रंग-दोष को इतना कम कर दिया गया है कि अब उससे फ़ोटो की प्लेट पर कुछ भी प्रभाव नही पड़ता।

यह तो हुई ताल-दूरदर्शक की बात । अब दर्पण-दूरदर्शक की बात लीजिए। इसके लिए भी वैज्ञानिकों को बड़ा परिश्रम करना पड़ा। वास्तव मे वैज्ञानिक दर्पण की ओर रंग-दोष की कठिनाई के कारण ही झुके थे। उन्होंने देखा कि गोलाकार दर्पण से ताल का काम निकल सकता है। अतः, उन्होंने दर्पण का प्रयोग किया। हम पहले कह चुके है कि इसका आविष्कार न्यूटन ने किया था। परन्तु दर्पण में क़लई करने की कठिनाई पड़ी। क़लई अच्छी न होने के कारण दर्पण में कई एक प्रतिबिब दिखलाई पड़ने लगते थे। अब यह त्रुटि बहुत कुछ दूर कर ली गई है। अब दर्पणों मे ऊपर की सतह पर असली चाँदी की क़लई की जाती है जो

लगभग छः महीने तक चलती है। इस प्रकार की कलई के फ़ीके पड़ने पर नई क़लई करने में बड़ी सुविधा रहती है। पहले दर्पण की पुरानी कलई को नाइट्रिक एसिड (तेज़ाब) मे घोलकर हटा देते हैं। फिर चाँदी के क्षार के घोल मे दर्पण को छोड़ दिया जाता है। इससे उस पर चमकीली चाँदी की नई तह चढ़ जाती है। इस प्रकार वही दर्पण एक बार फिर काम के लिए तैयार हो जाता है।

परन्तु दूरदर्शक मे प्रधान ताल के अतिरिक्त एक और ताल भी (अथवा दर्पण) होता है। इसमे ही आँख लगाकर देखते हैं। इसलिए इसे चक्षु-ताल कहते है। जिस प्रकार के पिंड को वेध करना होता है, उसके अनुसार चक्षुताल को बदला जा सकता है। सूर्य को देखने के लिए एक विशेष चक्षुताल काम मे लाया जाता है। यदि साधारण चक्षुताल का प्रयोग किया जाय तो देखनेवाले की आँख ही जल जाय। इस प्रकार के चक्षुताल के लिए बिना कलई के दर्पण का प्रयोग होता है जिससे सूर्य का ताप अधिक इकट्ठा नही होने पाता। कभी-कभी इस प्रकार के चक्षुताल को दूसरे गहरे रंग के शीशे से ढककर ताप के प्रभाव को और भी अधिक कम कर लिया जाता है।

परन्तु दूरदर्शक-सम्बन्धी कठिनाइयाँ यहीं दूर नहीं हो जाती। दूरदर्शक को खुली जगह पर इस तरह स्थापित करना होता है जिससे उसे इच्छानुसार प्रत्येक दिशा मे घुमाया जा सके। इसे "आरोपण" कहेंगे। वेधशाला के इंजीनियरों के लिए यह आरोपण एक बड़ी समस्या बन जाती है। यह आरोपण दो प्रकार से हो सकता है। एक का उल्लेख हम पीछे कर आये है। जब दूरदर्शक इस प्रकार लग जाता है तो उसे 'नाड़ीमंडल यंत्र' कहते है। दूसरे प्रकार का आरोपण हो जाने पर उसको 'दृग्-यंत्र' कहा जाता है। इनमें पहली रीति में ही अधिक सुविधा होती है।

दूरदर्शक ज्योतिषी का सबसे प्रमुख यंत्र है। वह उसके सभी यंत्रों से बड़ा होता है और उसके सहयोग के बिना अन्य यंत्र काम ही नही कर सकते। साथ ही धूप, वर्षा और ठंढ से उसकी रक्षा करना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि असावधानी बरती जाय तो यत्र का जीवनकाल बहुत थोड़ा हो जाता है और उस पर जो व्यय हुआ, वह व्यर्थ जाता है। इसी लिए एक विचित्र ढग का ग्रह (दूरदर्शक-ग्रह) बनाने की आवश्यकता होती है। इसी ग्रह का नाम 'वेधशाला' है।

(२) वर्णपरीक्षक (रश्मि-विश्लेषक यत्र)—सूर्य और तारों की अवस्था क्या है, उनमे कौन-कौन-से ऐसे तत्त्व पाये जाते है जिनसे हम अपनी पृथ्वी पर परिचित है। इन बातो का पता रश्मि-विश्लेषक यत्र या वर्णपरीक्षक से लगता है।

इन्द्र-धनुष की चर्चा चलाते समय हमने लिखा था कि सूर्य का प्रकाश वास्तव मे सफ़ेद वर्ण का नही होता वरन् सात रंगों का होता है। सात रगो के मेल से ही श्वेत वर्ण बनता है। यदि हम तिपहला कॉच (त्रिपार्श्व) ले और उसके पार देखे तो बाहर की सभी वस्तुएँ सात रगो म रँगी दिखलाई पड़ेंगी।

परन्तु प्रकाश के उद्गम अनेक हो सकते है। सूर्य के प्रकाश के स्थान पर हम गैस, बिजली की बत्ती या मैगनेशियम धातु-द्वारा उत्पन्न प्रकाश ले सकते है। परीक्षा करने पर पता चलता है कि प्रत्येक प्रकार के प्रकाश में एक जैसे रग नही होते। किसी में कोई रंग अधिक मात्रा में होता है अथवा कोई विशेष रंग होता ही नही। इस प्रकार हमे पता लगता है कि यदि हम जलती हुई वस्तु के प्रकाश का विश्लेषण करें तो हम बहुत कुछ यह जान जायँगे कि वह किस वस्तु से आ रहा है। कहीं-कहीं तो इस विषय मे हम बिलकुल निश्चित हो सकते

है। आतिशबाज़ी मे चमकदार लाल रंग खूब दिखलाई पड़ता है। इसका कारण स्ट्रानशियम धातु है। जलती हुई स्प्रिट के प्रकाश में कोई रंग नहीं होता। परन्तु यदि उस पर कुछ पिसा नमक छिड़का जाय तो वह पीले रंग का हो जाता है। यह सोडियम का रग है। नमक मे सोडियम का भाग प्रधान होता है। इसी प्रकार हम मैगनेशियम को भी उसके चमकदार प्रकाश से जान सकते है।

इस प्रकार हम देखते है कि जब वस्तुएँ जलकर प्रकाश देने लगती हैं तो उनमें से प्रत्येक का प्रकाश इतना विशेष होता है कि उसके द्वारा हम उन वस्तुओं को भी पहचान सकते है। इससे यह कल्पना की जा सकती है कि कदाचित् सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रों के प्रकाश का विश्लेषण करके हम यह जान सकेंगे कि वे किन-किन तत्त्वों के बने हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ससार मे जितनी भी वस्तुएँ है उनका अपना-अपना पृथक् वर्ण है। शर्त यह है कि यह रग हमे उसी समय दिखलाई देता है जब वस्तु गैस की दशा मे बदल गई हो या स्वय गरम गैस हो। वर्णपरीक्षक से यह बतलाया जा सकता है कि प्रत्येक वर्ण क्या है और वह किस मौलिक तत्त्व का वर्ण है।

वर्णपरीक्षक यत्र के दो भाग होते हैं। एक ओर कॉलिमेटर होता है। यह किरणों को समानान्तर बनाने का काम करता है। दूसरा भाग किरणमापक कहा जा सकता है। इसमें नली के एक ओर एक तिपहला काँच (त्रिपार्श्वक) लगा होता है और उसके सामने एक छोटा दूरदर्शक लगा होता है। कॉलिमीटर के मुख पर एक लम्बा छेद या शिगाफ़ होता है जिसे छोटा-बड़ा बनाया जा सकता है। यदि इस शिगाफ़ के सामने जलती गैस रख दी जाय या बिजली की बत्ती अथवा चिराग़ की लौ हो तो इस यंत्र के भीतर किरणों का जो चित्र होगा, उसमें भिन्न-भिन्न

रंगों के पट पर कम या अधिक दूरी पर कुछ विशेष चमकीली रेखायें दिखलाई पड़ेंगी। प्रत्येक रेखा एक विशेष धातु की परिचायक है। यह आश्चर्य की बात है कि विश्व के प्रत्येक मौलिक पदार्थ के लिए एक निश्चित रेखा है। हर एक पदार्थ की रेखा दूसरे पदार्थ की रेखा से भिन्न रंग की है और मूल सात रंगों के पट पर अलग-अलग सदा अपने विशेष स्थान पर दिखलाई देती है। इन रेखाओं के कारण सूर्य के वर्ण-चित्र में कोई भी रंग अविच्छिन्न नहीं रह पाता। इनमें कुछ रेखायें अधिक काली और मोटी होती हैं, कुछ इतनी सूक्ष्म कि आश्चर्य होता है। फिर कहीं इन रेखाओं की संख्या अधिक है, कहीं कम। यदि किसी अच्छे वर्णपरीक्षक से देखें तो सूर्य के रश्मिचित्र में ये रेखायें सैकड़ों और हजारों की संख्या में दिखलाई पड़ेंगी। एक प्रकार से ये काली रेखायें भी सूर्य के वर्णचित्र के लिए इतनी ही स्वाभाविक जान पड़ती हैं जितने सूर्य के प्रकाश के सात रंग।

इन काली धारियों से आविष्कारों में किस प्रकार सहायता मिलती है। अब हम इस सम्बन्ध में लिखेंगे। रश्मि-चित्र में एक रेखा 'द' कहलाती है। वास्तव में यह दो रेखाओं की बनी है। इन दोनों रेखाओं के बीच में बड़ा सूक्ष्म अन्तर है और इनमें से एक दूसरी से अधिक गहरी काली है। कल्पना कीजिए कि आप इन रेखाओं (द) पर अपना ध्यान जमाये हैं। उसी दशा में यंत्र के सामने स्प्रिट-लैम्प की वर्णहीन लौ रख दी जाती है और उस पर कुछ पिसा नमक छिड़का जाता है। अब सूर्य की रश्मि को नमक-द्वारा उत्पन्न पीली लौ के भीतर से होकर जाना पड़ता है। तब 'द' रेखायें अधिक गहरी और स्पष्ट हो जाती हैं। यद्यपि वर्णपट पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ प्रयत्नों के पश्चात् यह सिद्ध हो जायगा कि 'द' के गहरे हो जाने का कारण सोडियम की भाप है। (सोडियम नमक में वर्तमान रहता है)। अनुमान यह होता है

कि सोडियम और 'द' रेखाओं मे अवश्य कुछ सम्बन्ध है। अब यदि सूर्य की रश्मि को हटा दिया जाय तो उसी स्थान पर जहाँ काली 'द' रेखाये थी, दो चमकदार रेखाये दिखलाई पड़ेंगी। वास्तव में सोडियम की लौ सूर्य के प्रकाश को फ़ीका कर देती है और इन 'द' रेखाओं को कुछ और प्रकाश देती है। यही कारण है कि सोडियम की लौ के आगे ये रेखाये फ़ीकी हो जाती है।

वर्णपरीक्षक-द्वारा किये गये इस प्रकार के प्रयोगों को आगे बढाने से यह पता चलता है कि सोडियम की भाप मे यह गुण है कि जब वह गरम होती है तो उसमे से एक विशेष प्रकार का प्रकाश निकलता है। वर्णपरीक्षक मे देखने से यह प्रकाश केवल दो रेखाओं (द) मे सीमित दिखलाई पड़ता है। परन्तु इस भाप का एक विशेष गुण यह भी है कि उसमें इसी प्रकार के प्रकाश को रोक रखने की शक्ति है। सूर्य के अनेक वर्ण उसमें से छन जाते हैं, परन्तु इन दो रेखाओं के वर्ण नही छनते। फलतः, वहाँ हम काली रेखाये देखते है। वर्ण-परीक्षक के लिए यह विशेषता महत्त्वपूर्ण है। अन्य तत्त्वो की परीक्षा करने में भी यही बात सिद्ध हुई है। प्रत्येक तत्त्व मे यह गुण है कि गरम होने पर वह एक विशेष प्रकार का प्रकाश देता है और उसमें से उसी प्रकार का प्रकाश छन भी नही पाता। लोहे को लेकर परीक्षा करने पर भी यही बात सिद्ध होती है। जलते हुए लोहे के सामने वर्णपरीक्षा करने पर उसके द्वारा बनाये चित्र में सैकड़ों चमकदार धारियाँ पड़ जाती हैं। सूर्य के वर्णपट में भी इसी स्थान पर काली धारियाँ है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि सूर्य में लोहे की भाप मौजूद है।

इस प्रकार की धारियो को फ़ानहोफ़र रेखायें कहते है क्योंकि इनका आविष्कार इसी नाम के वैज्ञानिक ने किया। प्रयोगों-द्वारा सिद्ध

हुआ है कि सूर्य पर हाइड्रोजन, सोडियम, बेरियम, केलशियम, मेगनेशियम, एल्यूमूनियम, लोहा, मेन्गनीड़ा, क्रोमियम, कोबाल्ट, निकल, जस्ता, ताँबा, रिटेनियम, केडमियम, स्ट्रानशियम, केरियम, इरेनियम, शीशा और पोटेशियम नाम की धातुएँ मौजूद हैं। इस अनुसंधान में जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक किरशॉफ का नाम उल्लेखनीय है।

वर्णपरीक्षक का आविष्कार १९८० मे हुआ। इस आविष्कार ने ज्योतिष-विद्या मे क्रान्ति उपस्थित कर दी। उसके द्वारा हमारे सूर्य, ग्रहो और तारो के अध्ययन मे इतनी वृद्धि हुई जितनी कभी पहले नहीं हो पाई थी।

सूर्य के अध्ययन म हमने उसकी महान् ज्वालाओ का उल्लेख किया है। वर्ण-परीक्षक यत्र के सहारे Janssen (जेनसीन) और Lockeyer (लॉकइयर) ने एक नई रीति निकाली जिससे सूर्य की ज्वालायें कभी भी देखी जा सकती है। वैसे इनका दर्शन केवल सर्व-सूर्यग्रहण के समय ही होता था। वर्णपरीक्षक की यह विशेषता है कि हम उसे सूर्य के किसी भी भाग की ओर मोड़ सकते है और इस तरह हमने आश्चर्यजनक बातों का उद्घाटन किया है। सूर्य के भिन्न-भिन्न भागो के वर्णपट मे अन्तर है। इससे प्रकट होता है कि भिन्न-भिन्न भागों के निर्माण में भिन्न-भिन्न तत्वो ने भाग लिया है। वर्णपरीक्षक के द्वारा यह पता लगा है कि वास्तव में ये ज्वालाये जलती हुई हाइड्रोजन है। इन ज्वालाओं का प्रकाश हाइड्रोजन की रेखाओ मे ही सीमित रहता है। सूर्य के किनारों की ओर वर्णपरीक्षक को मोडने से ये ज्वालायें स्पष्ट हो जाती हैं।

तारो के अध्याय में हमने उनके प्रकाश के सम्बन्ध में कहा है। तारों के प्रकाश का अध्ययन वर्णपरीक्षक-द्वारा ही होता है। इस अध्ययन के आधार पर तारों के कई भेद किये गये हैं।

(१) पहली जाति के तारे वे है जिनका प्रकाश अत्यन्त स्वच्छ होता है (उदाहरण के लिए अभिजित और मृग-व्याध)। इन तारो के वर्णपट में काली रेखाये तुलना मे कम दीखती हैं। हाइड्रोजन की रेखायं प्रमुख है। सोडियम और मेगनेशियम धातुओं की रेखाये अत्यन्त अस्पष्ट है। फ़ोटो लेने पर यह निश्चित हो गया है कि इन तारो पर हाइड्रोजन का अस्तित्व अवश्य है।

(२) दूसरी जाति के तारे वे है। जिनका वर्णपट लगभग सूर्य के वर्णपट जैसा है (उदाहरण के लिए Capella और Aldebaran)। इनमे भी हाइड्रोजन की रेखाय प्रमुख है, परन्तु अनेक धातुओ की रेखायें भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

(३) तीसरी जाति के तारो के वर्णपट मे धातुओ की रेखाये और भी प्रमुख हो जाती है। इनकी विशेषता यह है कि उन पर हाइड्रोजन नही जान पडता क्योकि वर्णपट पर उसकी रेखाये नहीं दीखती (उदाहरण के लिए, a Orinoris अथवा Botelgeuze)।

वर्णपरीक्षक मे एक महत्त्वपूर्ण आविष्कार युगल तारो का हुआ है। इस सम्बन्ध मे प्रोफ़ेसर पिकरिंग का काम महत्त्वपूर्ण है। ये युगल-तारे इतने पास है कि अच्छे से अच्छे दूरदर्शक मे ये एक ही तारा दिखलाई पडते हैं। यदि हमारा भविष्य का दूरदर्शक आज के दूरदर्शक से हज़ारगुना अधिक शक्तिशाली हो, तो भी इन्हें अलग-अलग करना असम्भव था। इनमे से प्रत्येक तारा दूसरे को घेरकर घूमता है। फलत:, जब एक तारा पृथ्वी के समीप आता है, तो दूसरा उतना ही हट जाता है। वर्णपरीक्षक के द्वारा उनके प्रकाश वर्णपट पर लिये जाने पर यह पता चलता है कि जो तारा पृथ्वी से अधिक समीप है उसकी रेखायें कुछ अधिक हटी होती है। फल यह होता है कि कभी-कभी दो रेखाये

(जोड़) दिखलाई पड़ती हैं। इससे ही इनके युगलत्व का पता चलता है। वर्णपरीक्षक के द्वारा यह भी पता लगा है कि एक युगल तारा दूसरे युगल तारे का चक्कर कितने समय मे लगा लेता है।

यही नही, इस यंत्र के द्वारा तारो की गति का भी पता चलता है। गति के अनुसार तारो के वर्णपट की रेखाये आगे-पीछे हटती-बढती रहती है। यद्यपि यह अन्तर बहुत कम होता है, परन्तु उससे यह गणना कर ली जाती है कि तारा कितनी गति से पृथ्वी की ओर बढ रहा है अथवा उससे हट रहा है। इससे हम युगल तारो के चक्र का विस्तार भी जान सकते है और उनकी तौल भी निश्चित कर सकते है। यह बात आश्चर्य-जनक जान पडती है परन्तु जहाँ विज्ञान ने अनेक आश्चर्यो का सृजन किया है, वहाँ एक यह भी है। हम पृथ्वी के साधारण प्राणी अनन्त आकाश मे अनन्त दूरी पर स्थित पिडो का भार केवल उनके प्रकाश से स्थिर कर सकें, इससे अधिक बडा आश्चर्य और क्या होगा?

(४) एक अन्य महत्त्वपूर्ण यंत्र Meridian Circle है। इस यंत्र का प्रधान भाग दूरदर्शक ही है परन्तु यह एक अद्भुत रीति से स्थापित होता है। उसका सम्बन्ध एक धुरी से है जिसके ऊपर वह टिका होता है। इस प्रकार यंत्र केवल किसी एक विशेष देशान्तर में ही घुमाया जा सकता है। दूर-दर्शक के ताले पर बहुत छोटे तागे फैलाये जाते है। दर्शक देखता रहता है कि कब चन्द्रमा, तारे या ग्रह ने किसी तागे को काटकर दृष्टिक्षेत्र मे प्रवेश किया। वह एक सेकंड के शतांश तक इस घटना का समय लिख लेता है। धुरी पर चाँदी का वृत्त लगा होता है। इसके अनेक भाग किये जाते हैं। यह वृत्त भी दूरदर्शक के साथ-साथ घूमता है। इससे सूक्ष्मतम गणना की जा सकती है।

यंत्र के मुख पर जो तागे होते है, वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। इतने सूक्ष्म तागे हम तैयार नही कर सकते। कोई-कोई तारा अत्यन्त ही क्षुद्र विंदु होता है और उसको देखने के लिए और उसका स्थान स्थिर करने के लिए मकड़ी के बारीक जाले के सिवा अन्य किसी वस्तु से काम ही नही चल पाता। मकड़ी के बारीक जाले को ताल के मुख पर फैलाने में बड़ी कठिनाई होती है। यह ध्यान रखना पड़ता है कि कही जाला अधिक फैल न जाय और उसके सच्चे कोण बिगड़ न जायँ। जब कोई तारा दिखलाई पड़ता है तो दूरदर्शक को घुमाकर उसे इस जाले के बीच की दो काटती हुई रेखाओं के विन्दु पर कर देते है। इस यंत्र के साथ अनेक ऐसे यंत्र लगे होते हैं जिनका काम अत्यन्त सूक्ष्म गणना करना है। घंटे के द्वारा समय मालूम होता है। हम जानते हैं कि सेकिंड के कितने अंश पर किसी तारे ने प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त एक चिह्नित वृत्त ही होता है जिससे आकाश की उँचाई को भी पढ़ा जा सकता है। इन यंत्रों की सहायता से हम विशेष अवस्था में दूरदर्शक की स्थिति निश्चित कर लेते हैं।

(५) वेधशाला मे और भी अनेक यंत्र रहते हैं जो आकाश को वेध करने के लिए किसी न किसी प्रकार आवश्यक है। इनमें Altazimutt, Chronograph, Mirometer (Filar) और Heliometer प्रमुख है। यहाँ पर हम इन यंत्रों का परिचय देना आवश्यक नही समझते। परन्तु इन यंत्रों का आविष्कार और उनका विकास प्रत्येक सर्वसाधारण को आश्चर्य-जनक प्रतीत होगा। इनके अध्ययन के बिना वर्तमान ज्योतिष का ज्ञान अपूर्ण है। वास्तव में खगोल-शास्त्र के सारे चमत्कारो का उद्घाटन इन्ही आविष्कारो के कारण सम्भव हो सका है।

परन्तु हमें एक यंत्र के विषय में लिखना आवश्यक मालूम होता है। यह यंत्र नाक्षत्र कैमरा है। वर्तमान ज्योतिष में कैमरे का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(६) दूरदर्शक कैमरा (नाक्षत्र कैमरा)—सिद्धान्त में यह यंत्र साधारण कैमरा की भाँति ही होता है परन्तु यह आकाश के अध्ययन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साधारण कैमरा में एक ओर लेञ्ज (ताल) लगा होता है और दूसरी ओर प्लेट। दूरदर्शक कैमरा भी ऐसा ही होता है। इसमें भी एक ओर ताल रहती है और दूसरी ओर प्लेट। फोटो लेते समय दूरदर्शक की चक्षु-ताल निकाल लेते हैं और उसके स्थान पर प्लेटधर लगा देते हैं। बड़े दर्शकों में इस तरह बड़े-बड़े चित्र लिये जा सकते हैं। परन्तु छोटे दूरदर्शकों में इस रीति से काफी बड़ा चित्र नहीं आ सकता। इसलिए प्लेट और प्रधान ताल के बीच में एक दूसरा ताल लगा देते हैं। इससे चित्र बड़े आकार का आता है।

परन्तु दूरदर्शक में आकाश का बहुत छोटा भाग दिखलाई पड़ता है। आकाश के किसी बड़े भाग का चित्र एक साथ उतारना हो, तो इस प्रकार का यंत्र बेकार है। अतः इसके लिए विशेष नाक्षत्र कैमरों का आविष्कार हुआ है। दूरदर्शक की बग़ल में छोटे फोकल लम्बान के ताल के बने कैमरे बाँध दिये जाते हैं। इनमें और साधारण कैमरों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। यह अवश्य है कि ये कैमरे अधिक मज़बूत होते हैं। इनके ताल बड़े भारी होते हैं।

नक्षत्रों का फ़ोटो लेना सरल नहीं है। नक्षत्र स्थिर नहीं रहते। इसलिए कैमरे को भी उनके पीछे-पीछे घिसटना पड़ेगा। इसी लिए नक्षत्रों का चित्र उतारने के लिए नाड़ी-मण्डल दूरदर्शक का प्रयोग किया जाता है और उसे घड़ी से चलाया जाता है। परन्तु घड़ी की चाल में ज़रा-सा

अन्तर आने पर भी नक्षत्र दृष्टि-पथ के बाहर हो सकता है। इसलिए फोटो लेनेवाले दूरदर्शक के साथ एक दूसरा दूरदर्शक भी उसी तारे को वेध करता रहता है। जहाँ घड़ी की चाल मे अन्तर पड़ा तो पास के वेधक ने बिजली का बटन दबाकर घड़ी को ठीक कर दिया और नक्षत्र कैमरे की प्लेट के ठीक केन्द्र में बना रहा।

सबसे पहले फ्रैंकलिन ऐडम्स ने अपने कैमरे के सहारे सारे आकाश के २०६ चित्र उतारे। अब ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि केवल ७५ चित्रों मे सारा आकाश आ जाता है। इस प्रकार के प्रयोग मे ससार की लगभग सभी वेधशालाओ की सहायता माँगी जाती है। पिछली बार जब इस प्रकार के चित्र उतारे गये थे तो भारतवर्ष की निजामिया वेधशाला ने भी सहयोग किया था। अब हार्डबर्ड-वेधालय मे इस प्रकार के प्लेट सगृहीत हैं। इन प्लेटों से ज्योति के ऐतिहासिक अध्ययन मे बड़ी सहायता मिलती है और अनेक नये तारो का पता लग जाता है। इस प्रकार के चित्र समय-समय पर ले लिये जाते है और पिछले चित्रो से मिलान करने पर अनेक रहस्यों का उद्घाटन होता है। अनेक वेध-शालाओ मे इन कैमरों-द्वारा नित्यप्रति सूर्यकलंकों का फोटोग्राफ़ लिया जाता है। कभी-कभी ये चित्र अनेक भ्रम भी उपस्थित कर देते है। जैसे, यदि किसी कारण प्लेट पर कुछ काले विन्दु बन गये तो उन्हे नक्षत्र मान लिया। इस प्रकार की त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। एक प्लेट पर तीन फ़ोटो लिये जाते है। इस तरह प्रत्येक नक्षत्र के लिए तीन सटे-सटे विन्दु आते है। इस प्रकार हम नक्षत्र को अन्य किसी कारण से उत्पन्न विन्दु से अलग कर सकते है।

तारों के फ़ोटो के लिए प्रकाशदर्शन का समय इतना लम्बा होता है कि हमे आश्चर्य होता है। साधारण फोटो के लिए प्रकाशदर्शन केवल कुछ

ही क्षणों के लिए होना चाहिए। परन्तु तारों का प्रकाश इतना कम है कि उनके लिए घंटों और कभी-कभी दिनों का लम्बा प्रकाश-दर्शन चाहिए।

परन्तु तब एक दूसरी कठिनाई सामने आती है। तारे पूर्व की ओर से निकलकर पश्चिम की ओर जाते दीखते हैं। अब यदि साधारण कैमरे का मुख उत्तरी ध्रुव की ओर करके उसे आध घंटे तक यों ही छोड़ दिया जाय तो जो चित्र उतरेगा उसमें प्रत्येक तारा ध्रुव के चारों ओर चक्कर लगाता दिखलाई पड़ेगा। इसका प्रतिकार कैसे हो? इस समस्या का हल ज्योतिषियों ने इस प्रकार किया है कि वह अपने दूरदर्शक को सदैव ध्रुव की ओर रखता है। दूरदर्शक में एक घड़ी लगी रहती है जिसकी सहायता से हम दूरदर्शक को हाथ से बिना छुए चला सकते हैं। यह ध्यान रखना पड़ता है कि यदि कोई तारा दूरदर्शक में इस समय दिखलाई देता हो तो आध घंटे बाद भी दिखलाई दे। बेचारा ज्योतिषी भी साथ के दूरदर्शक में झाँकता रहता है। यदि तारा फ़ोकस में से निकलने लगा तो वह दूरदर्शक चालक को संदेश भेजकर घड़ी की चाल को घटाता-बढ़ाता रहता है। यह काम वास्तव में बड़े परिश्रम का है। कभी-कभी कई घंटों तक प्रकाश देना पड़ता है और ज्योतिषी बैठा रहता है। फोटो तैयार हो जाने पर उनको नापनेवाली मशीन में रख दिया जाता है। इसमें इंच के हजारवें हिस्से को बड़ी सुगमता से नाप सकते हैं।

तारों की दूरी का नाप

देखने में तारे इतने समीप लगते हैं जैसे ठीक हमारे सिर पर हों, परन्तु गणना से उनकी दूरी इतनी अधिक मालूम होती है कि मनुष्य की

कल्पना स्तब्ध रह जाती है। हम नीचे कुछ दो-चार तारो की दूरी बतला-कर अपने अध्ययन को आगे बढ़ायेंगे।

१—ग्रमविज नं० ३४ की दूरी ६ पदुम ९० खरब मील है।

२—ईटा कैसोपिया " ९ " ८० " "

३—टासेटी " " ६ " ५ " "

४—अल्फाकन्टारी " " २ " ६० " "

यह कुछ समीप के तारे है। दूर के तारो की दूरी तो इनसे कही अधिक है। यदि हम सबसे तेज़ वायुयान* पर बैठकर सबसे पासवाले तारे पर जाना चाहें तो हमे १ करोड़ वर्ष से अधिक समय लगेगा।

प्रश्न यह उठता है कि इतनी दूर के तारो की ठीक-ठीक दूरी कैसे निश्चित की जा सकती है?

किसी भी वस्तु की दूरी निकालने मे हमे आँख ही सबसे अधिक सहारा देती है। इससे हम उस वस्तु के डील-डौल और उसकी स्थिति (Perspective) को जान सकते है। वस्तु जितनी ही दूर होती है, उतना ही आँख की नसों पर ज़ोर पड़ता है। सक्षेप मे ये ही कुछ बाते है जिनका प्रयोग हम तारो की दूरी निकालने में भी करते हैं। यह अवश्य है कि तारों की दूरी निकालना इतना सहज काम नही है जितना पृथ्वी पर की वस्तुओ की दूरी निकालना। इसके अतिरिक्त इन सभी बातों से तारों की दूरी निकालने मे सहायता मिले, सो बात भी नहीं।

तारों में कुछ बहुत चमकीले है। हम उन्हें साधारण नंगी आँखों से भी देख सकते है परन्तु कुछ तारे बहुत ही फ़ीके है। वे बड़ी मे

---

*मान लीजिए कि उसकी गति २५० मील प्रतिघंटा है।

बड़ी दूरबीन की सहायता से भी दिखलाई नही पड़ते। जैसे बड़े-बड़े आकार से हम समझ जाते है कि जिस वस्तु को हम देख रहे हैं, वह पास हैं। वैसे ही हम यह निश्चित रूप से नही कह सकते कि जो तारा फ़ीका है वह हमसे बहुत दूर है और जो चमकीला है, वह निश्चय रूप से अधिक निकट है। अत: तारो की दूरी के सम्बन्ध में उनकी चमक पर विश्वास नही किया जा सकता। स्थिति की बात तारो के विषय मे लागू नही होती, यह स्पष्ट है। फोकस से भी अधिक सहायता नही मिलती क्योकि ग्रह और तारे सभी इतनी दूर है कि वे सभी एक ही साथ फोकस मे आ जाते है। यदि चन्द्रमा फ़ोकस मे है तो तारा भी फोकस मे मिलेगा।

वास्तव मे तारो की दूरी नापने के लिए आँख अवश्य अकेली काम नहीं देती। यदि हम एक दूरदर्शक खूब उत्तर की ओर एक और खूब दक्षिण की ओर लगायें तो इन दोनो से वेध करने पर चन्द्रमा की दूरी निकल आयेगी। वास्तव मे चन्द्रमा की दूरी इसी तरह निकाली गई है। इस प्रकार हमे एक त्रिभुज के एक भुजा और दो कोणो की नाप मालूम हो जाता है। इसमे शेष नाप सरलता से निकाली जा सकती है।

यहाँ सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि हम अपनी पृथ्वी पर केवल ८,००० मील दूर जा सकते है। यदि इतनी दूरी पर से किसी एक तारे को वेध किया जाय तो कोणों के विकला में अधिक अन्तर नहीं आता और यदि नापने में थोड़ी भी भूल हुई तो फिर अनर्थ हो सकता है।

परन्तु यहाँ पृथ्वी की सूर्य के ओर की परिक्रमा हमारी सहायता करती है। सौभाग्यवश इस परिक्रमा का मार्ग वृत्ताकार नहीं, वरन्

दीर्घ वृत्ताकार है। पृथ्वी की इस गति के कारण तारों में भी एक दूसरे के हिसाब से, गति आ जायगी। इस गति को हम 'लम्बन' कहेंगे।

हमारी पृथ्वी प्रत्येक ६ महीने बाद १८½ करोड मील की दूरी पर चली जाती है। आकाश मे उसकी जो स्थिति है, उसमे इसी कारण थोडा अन्तर पड जाता है। फल यह होता है कि आज जिस स्थान पर हम किसी तारे को देखते हैं, छ महीने बाद वह उस स्थान से कुछ हटा जान पडता है। साढे अठारह करोड मील चलने पर भी यह अन्तर बहुत कम होता है। परन्तु इस तरह हम पृथ्वी से उस तारे की दूरी निकाल सकते है।

वास्तव मे तारे की दूरी "लम्बन"-द्वारा नापी जाती है। मान लीजिए कि सू सूर्य है और पृ पृथ्वी है। दीर्घ वृत्त ख व पृथ्वी का मार्ग है। क मे तारा क ता दिशा मे दिखलाई पड़ेगा और ख से ख ता दिशा मे। स्पष्ट है कि यह तारा दूर के ताराओ के हिसाब से एक दीर्घ वृत्त (ellipse) मे चलता हुआ दिखलाई देगा। परन्तु तारे की गति ("लम्बन") कैसे जानी जाय? १७वी शताब्दी मे जेम्स ब्रैडली ने एक तरीका बताया। उसने कहा कि तारे को देखने के लिए दूरबीन को कभी एक ओर कभी दूसरी ओर झुकाना होगा। इसके लगभग बीस वर्ष बाद सर विलियम हरशेल ने "लम्बन" नापने का एक नया तरीक़ा बतलाया। उसने कहा कि किसी तारे का स्थान ध्रुव या ख-मध्य से नापना कठिन है। हमे उस तारे के पासवाले फ़ीके तारो से सहायता लेनी चाहिए। इस तर्क पर बढ़ते हुए हरशेल ने उन तारों की एक सूची बनाई जिनके समीप फ़ीके तारे थे। उसने फ़ीके तारे यह समझकर चुने थे कि वे चमकीले तारो से अधिक दूर होगे। दो महीनों में उसने २७५ तारो की सूची बना ली और २० वर्ष तक उन पर काम करता गया। परन्तु वह तारो की दूरी न नाप सका।

आज से कोई १०० वर्ष पूर्व तक तारों का "लम्बन" नापा नहीं जा सका था। उस समय इँगलैंड के राज-ज्योतिषी पॉण्ड ने कहा था—

"मुझे जान पड़ता है कि हमारे यंत्र जितने अधिक स्थूल बने थे, उतने ही अधिक वे ज्योतिषियों को बहका देते थे कि तारों में नापने योग्य लम्बन है। इटली में इस प्रकार बड़े-बड़े ज्योतिषी भ्रम में पड़ गये। डबलिन का यंत्र इनके यंत्र से कहीं अधिक अच्छा है। इसी कारण उसमें उतना लम्बन नहीं दिखलाई पड़ता जितना इटली के ज्योतिषियों ने निकाला था। इस बात पर विश्वास कर मैंने यह प्रमाणित किया है कि ग्रीनविच का यंत्र और भी अधिक दोषरहित है। उस यंत्र में कुछ भी लम्बन नहीं दिखलाई पड़ता।

इस कथन के १५ वर्ष के भीतर ही (सन् १८३८-३९ में) स्ट्रुवे, बेसेल और हेन्डरसन ने क्रमश: अभिजित, हंस और अल्फाकटारी के 'लम्बन' नाप लिये। स्ट्रुवे ने माईक्रोमीटर के प्रयोग से अभिजित का लम्बन ०"२६२ + ०"०२५ प्रमाणित किया। लम्बन की दूरी का ज्ञान होते ही तारों की दूरी नापने में कोई कठिनाई नहीं होती।

तारों के सम्बन्ध में सबसे अधिक खोज हालैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी कैप्टाइन ने की। उन्होंने आकाश के १८ छोटे-छोटे भाग किये और उन्हें कई एक वेधशालाओं के सुपुर्द कर दिया कि इन भागों में जो तारे हैं उनकी दूरी आदि का पता लगायें।

अब तारों की दूरी नापने के लिए फोटोग्राफ़ी का प्रयोग किया जाता है। लम्बन के नापने में केवल ००५ विकला की त्रुटि सम्भव है। जिस तारे का "लम्बन" नापना हो उसका फोटो एक बार ले लिया जाता है और फिर छ:-छ: महीने बाद बार-बार चार-पाँच वर्ष तक फोटो लेते हैं। इनकी तुलना से ठीक-ठीक "लम्बन" का पता चल जाता है।

परन्तु जैसे-जैसे तारों की दूरी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उनके खिसकने की मात्रा ("लम्बन") कम होती जाती है। पृथ्वी की वार्षिक परिक्रमा का सहारा लेकर भी हम केवल पाँच पद्म मील के घेरे के अन्दर तक के तारो की दूरी का पता लगा सकते है। अब तक जो खोज हुई है, उससे पता चला है कि कुछ तीस तारे ऐसे है जो एक पद्म मील की दूरी के भीतर-भीतर हैं और पाँच पद्म मील की दूरी के भीतर चार सौ से अधिक तारे नही है।

आप पूछेगे कि पाँच पद्म मील की दूरी पर जो तारे बसे है, उनकी दूरी का पता कैसे लगता है? प्रश्न उचित है। यह दूरी स्वयम् इतनी अधिक है कि उसमे तारे के स्थान मे कोई अन्तर नही पड़ता। इसकी अपेक्षा अठारह-उन्नीस करोड़ मील की दूरी भी कुछ नही है। इसलिए पाँच पद्म मील से अधिक दूर के तारो की दूरी निकालने के लिए ज्योतिषी को दूसरा उपाय करना पड़ता है। उसके पास तारो की ज्योति नापने के लिए यंत्र है। इन यंत्रों के द्वारा वह बड़ी सावधानी से काम करने के बाद थोड़ी-बहुत अटकल लगा लेता है, कि कौन तारा कितनी दूर होगा। इस तरह आज हम असंख्य तारों को श्रेणीबद्ध कर सके हैं और उनमें से कितनों ही की दूरी जान पाये है। हमे मालूम हो गया है कि आकाशगगा मे जो तारे दिखलाई पड़ते है, वे तारे हमारे सूर्य से कम से कम दस शंख की दूरी पर है और हमारे विश्व से बाहर जो तारे फैले हुए है, वह इतनी दूर है कि उन तक पहुँचने में प्रकाश को पचास हज़ार वर्ष से कम समय नहीं लगेगा।

तारों की दूरी नापने की एक अन्य रीति भी है। इसमे त्रिपार्श्वक की सहायता ली जाती है। यदि सब तारे इतने ही दूर होते जितना दूर सूर्य है तो भी उनमें कुछ बहुत चमकीले, कुछ बहुत कम चमकीले

और शेष इन्हीं के बीच के रहते। सूर्य की दूरी पर तारे में जो चमक रहेगी उसे हम वास्तविक चमक कहेंगे। हम यह भी जानते हैं कि दूरी आधी होने से प्रकाश चौगुना और दूरी तिहाई होने से प्रकाश नौगुना बढ़ जाता है इत्यादि। रश्मि-विश्लेषण चित्र में यदि एक ही जाति के तारों का वेध किया जाय तो उनमें कई एक काली लकीरें निकल आती हैं। इनमें से यदि दो लकीरें चुन ली जायँ तो यह पता चलता है कि उनके घनत्व में विशेष सम्बन्ध है। प्रसिद्ध ज्योतिषी ऐडम्स ने यह पता लगाया है कि तारे की वास्तविक चमक और उसके रश्मि-विश्लेषक चित्र की दो रेखाओं में ऐसा सम्बन्ध है कि वास्तविक प्रकाश का पता इन दो रेखाओं के घनत्व से तुरन्त लग जाता है। ऐडम्स ने इस प्रकार लगभग १,००० नक्षत्रों की वास्तविक चमक का पता लगाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष चमक मालूम हो जाने पर हिसाब लगाकर दूरी निकाल ली गई। इस रीति से अब तक तीन हजार तारों की दूरी नापी गई है।

जो तारे इतनी दूरी पर हैं कि उनकी दूरी ऊपर की दोनों रीतियों से नहीं निकलती उनकी दूरी का औसत अन्दाजा तो अवश्य ही लगाया जा सकता है। यह उनकी निजी गति के ज्ञान से सम्भव है। यदि निजी गति कम है, तो तारा अधिक दूर है। यदि अधिक है तो तारा निकट है। परन्तु इस रीति से तारे की ठीक-ठीक दूरी नहीं निकाली जा सकती।

ज्योतिष का अध्ययन एक साधारण ऑपेरा ग्लास से आरम्भ करना चाहिए। पहले विद्यार्थी आकाश के महत्त्वपूर्ण और अधिक प्रमुख पिंडों (तारों) से परिचित हो ले। वह अपना अध्ययन सप्तऋषि से आरम्भ करे। प्रारम्भिक ज्ञान के लिए इन सातों तारों से परिचित

होना आवश्यक है। इनमे दो 'निर्देशक' कहलाते है। आकाश के अध्ययन में इनका विशेष महत्त्व है। इनके द्वारा 'ध्रुव' को खोज निकालना सुगम होता है। यही ध्रुव आकाश का सबमे महत्त्वपूर्ण तारा है। सारे तारे इसको केन्द्र बनाकर घूमते है।

सप्तर्षि के सात तारे लगभग एक समकोण बनाते हैं। साधारण रीति पर नगी आँख से देखने मे इस समकोण के भीतर दो-तीन तारे दिखलाई पड़ते है। अमावस्या की किसी उज्ज्वल रात मे देखने से इनकी सख्या बढ जायगी। सम्भव है, लगभग एक दर्जन दिखाई दे। अब यदि ऑपेरा शीशे का सहारा लिया जाय तो इसी सीमित क्षेत्र मे लगभग १ शत तारे दिखलाई पड़गे। परन्तु इन तारो की सख्या यही समाप्त नही हो जाती। दूरदर्शक मे देखने मे इनकी सख्या सहस्रो पर पहुँच जायगी। इनमे से सहस्रो तो अत्यन्त छोटे, फीके, अस्पष्ट विन्दु-मात्र दीख पड़ेंगे।

इससे पता चलता है कि आकाश मे कितने तारे है। वास्तव मे जिस भाग मे सप्तर्षि है, उस भाग मे तारों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। अन्य भागो मे इनकी सख्या कई गुनी अधिक है। अब तक कोई नही बता सका है कि सम्पूर्ण आकाश मे कितने नक्षत्र है। कदाचित् हिन्दुओ की यह कल्पना ठीक हो कि प्रत्येक मनुष्य के लिए एक तारा निश्चित है जो उसके भाग्य का तारा है। अब तक सबसे बड़े दूरदर्शक के सहारे ५,००,००,००० तारे देखे जा सके है।

भारतीय ज्योतिष और वेधशालायें

हमारे देश में वेध की परम्परा बड़ी प्राचीन मालूम होती है। ऋग्वेद मे २७ नक्षत्रों, सप्तर्षि आदि तारों और ग्रहो की परिस्थिति के विषय मे

अनेक वर्णन है तथा शनिकृत रोहिणी शकट के भेद का उल्लेख है। यजुर्वेद तथा तैत्तिरीय संहिता में यह उल्लेख मिलता है कि रोहिणी पर चन्द्रमा की अतिशय प्रीति है और १८ वर्षो मे वह ६ बार उसके अधिक निकट आ जाती है। वाल्मीकिरामायण और महाभारत मे ग्रहों और धूमकेतुओ के उदय और अस्त तथा उनके फलाफल का विशद वर्णन है। वाराहमिहिर की बृहत् संहिता की टीका करते हुए घटोत्पल ने लिखा है—

"पैतामह केतु पाँच सौ वर्ष प्रवास मे अर्थात् सौरचक्र के बाहर गुप्त अवस्था मे रहकर उदय होता है। काश्यप का श्वेतकेतु १,५०० वर्ष प्रवास दशा मे रहकर उदय होता है और अपसव्य क्रम से गमन करता हुआ तथा ध्रुव, अभिजित और सप्तर्षिपुंजों को भेदता हुआ अथवा स्पर्श करता हुआ अर्द्ध-प्रदक्षिणाकार पथ से आकाश मे घूमता है। इसकी शिखा धूमवर्ण की होती है और उसके उदयकाल में सुभिक्ष होता है। विभावसु रश्मि केतु १०० वर्ष लुप्त रहकर भावर्त नामक केतु के पीछे से कृत्तिका नक्षत्र के पास उदय होता है। इसकी शिखा धूम्राकार होती है।

यहाँ पितामह, उद्दालक, कश्यप आदि धूमकेतुओ के नाम हैं।

इस वर्णन से यह पता चलता है कि प्रारम्भिक भारत मे वेधशालायें अवश्य रही होंगी और हमारे पूर्वज ऋषियो ने बडे परिश्रम से ज्योतिष के क्षेत्र मे शोध किया होगा।

परन्तु वर्तमान समय में ज्योतिर्विद्या के जो प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है, उनमे केवल कुछ ही प्राचीन है और उनमे निम्नलिखित वेधयंत्रों का उल्लेख मिलता है—

(१) गोल-यंत्र, (२) कपाल-यंत्र, (३) नाड़ीवलय, (४) पलमा-यंत्र, (५) क्षितिज शंकु-यंत्र, (६) सममंडल-यंत्र, (७) सममंडल शंकु,

(८) चक्र-यंत्र, (९) चाप-यंत्र, (१०) तुरीय-यंत्र, (११) फलक-यंत्र और (१२) षष्ठि-यंत्र। इन प्राचीन ग्रन्थों मे इन वेधयंत्रों के निर्माण का विशद वर्णन है। इन यंत्रों की रचना अत्यन्त जटिल है। हम इनमें केवल एक यंत्र (गोल-यंत्र) का वर्णन करके इस अध्ययन को आगे बढ़ायेंगे ।

गोल-यंत्र ज्योतिर्विज्ञान का मुख्य यत्र है। इसे खगोल का दर्शक अथवा दृष्टान्त समझिए। इस पर अश्विनी आदि २७ नक्षत्र, सप्तर्षि, कालीय, शर्मिष्ठा, लघुऋक्ष, ध्रुव, अभिजित, ब्रह्महृदय, अगस्त्य, त्रिशंकु आदि तारकपुंजो को बड़ी सतर्कता से अकित किया जाता है। सम्पूर्ण गोलक ३५० अंशों मे विभक्त होता है और उस पर विषुवत् वृत्त और उसके समानांतर अनेक अन्य वृत्त बने होते हैं। इस गोल-यत्र का आधार एक यष्टि होती है। यह यंत्र इस यष्टि पर इस प्रकार स्थापित होता है कि प्रत्येक दिशा मे घूम सके। प्राचीन ग्रन्थों मे लिखा है कि यह यंत्र स्वयम् घूम सके, इसकी भी योजना कर दी गई थी। परन्तु यह विधि गोप्य थी। हाँ, यह अवश्य पता चलता है कि इस गोल-यंत्र के पारे और जल के संयोग से स्वयं वह किया जाता था; कैसे, इस विषय पर कोई प्रकाश नही पड़ता।

वर्तमान समय में भारतीय प्राचीन वेधशालाओं का कही भी अस्तित्व नहीं मिलता। ज्योतिष-शास्त्र में उज्जैन का नाम अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। कदाचित् वाराहमिहिर का सम्बन्ध उज्जैन के सम्राट् विक्रमादित्य से था। परन्तु उज्जैन में भी उतनी पुरानी वेधशाला नहीं है।

मध्ययुग के अन्त में महाराज जयसिंह (सन् १६८६ सन् १७४३) ने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और बनारस में चार वेधशालाये बनवाई थीं। इनके भग्नावेष अब भी हैं। जयपुर की वेधशाला राजप्रासाद के

भीतर थी और इस कारण उसके यंत्र अब भी अधिक सुरक्षित हैं। उज्जैन की वेधशाला मे कोई भी यंत्र अच्छी दशा मे शेष नही रहा। बनारस के मानमदिर का तो कदाचित् स्थानीय पंडितों ने कभी प्रयोग ही नही किया, यद्यपि काशी पंचांग बनाने मे प्रमुख है। दिल्ली की वेधशाला भी पुरातत्त्व के अनुसंधानों का विषय हो रही है।

जयसिह ने हिन्दू, मुसलमान और योरपीय ज्योतिष का अच्छा अध्ययन किया था और उनके यत्रो पर उनका प्रभाव दिखलाई पडता है। परन्तु उनका महत्त्व इस बात मे है कि उन्होंने एक बार ज्योतिर्विद्या के पुनरुत्थान की चेष्टा की यद्यपि दुर्भाग्यवश वे सफल नही हो पाये। उन्होने धातु और मिट्टी-चूने तथा पत्थर के इतने बड़े-बड़े यंत्र बनाये कि उनमे त्रुटियो के लिए अधिक स्थान नही रहा। यह ध्यान रखना चाहिए कि उस समय तक योरप मे भी ज्योतिष-शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ नही हुआ था। जयसिह के यंत्रों मे यंत्रराज, सम्राट्-यत्र, जयप्रकाश, राम-यंत्र, दिग्माश, नाड़ीवलय, दक्षिणावृत्ति और षष्ठांश महत्त्वपूर्ण हैं।

हमारे देश में फलित ज्योतिष का विकास भी महत्त्वपूर्ण रहा। फलित ज्योतिष मे ग्रहों का स्थान प्रमुख है। वे मानव-जीवन पर अनेक रूप से प्रभाव डालते रहते है। 'ग्रहा वै कर्मसूचका:'। ग्रहों की स्थिति, गति, वक्रता, अतिचार आदि का जाननेवाला व्यक्ति किसी भी मनुष्य के जीवन के सम्बन्ध में भूत, वर्तमान और भविष्य की सभी बातें बता सकता था। परन्तु यह बात यही समाप्त नही हो जाती थी। वह व्यक्ति मानसिक और आध्यात्मिक साधना के द्वारा अमांगलिक भावी घटनाओं को रोक भी सकता था। ग्रह-शान्ति की इस प्रणाली का नाम 'अहंग्रह उपासना' रक्खा गया। परन्तु यह विधि सर्वसुगम नहीं थी।

इसलिए जन-साधारणों के लिए एक अन्य व्यवस्था की गई। यदि वह व्यक्ति जिसके ऊपर किसी ग्रह का अनिष्टकारक प्रभाव पड़नेवाला है उस देवता का आश्रय ले और उसकी पूजा-अभ्यर्थना करे, तो उसकी पीड़ा का नाश हो जायगा अथवा उसे वह अनिष्ट अधिक हानि नही करेगा। ग्रह-शान्ति की इस जन-सुगम प्रणाली का नाम प्रतीकोपासना है।

इसके आगे बढकर ग्रहो को अध्यात्म-जगत् मे स्थान दिया गया। अथर्ववेद मे जहाँ अन्य देवताओं की पूजा है वहाँ ग्रह-शान्ति का वर्णन भी है।* प्रत्येक लौकिक और आध्यात्मिक कर्म के साथ नवग्रह की पूजा जोडी गई। प्रत्येक ग्रह का 'ध्यान' उपस्थित किया गया। सबके अलग-अलग लोक है, अलग-अलग वाहन है। उनकी शक्ति और क्रियाओ मे भी भेद है। ग्रहो के भिन्न-भिन्न रूप बतलाये गये—

(१) मंगल—यह भरद्वाज गोत्र के क्षत्रिय है। इनका रंग अग्नि के समान है। वाहन मेष है। रक्त वस्त्र और माला धारण करते है। शक्ति, वर, अभय और गदा से सम्पन्न है।

(२) बुध—अत्रि गोत्र है। वर्ण पीला है। चार हाथो मे ढाल, गदा, वर और खड्ग है। पीले वस्त्र धारण करते और सिह पर आरूढ होते है।

(३) बृहस्पति—अङ्गिरा गोत्र के ब्राह्मण है। वर्ण पीत। पीताम्बर पहनते है। इनका आसन कमल है, जिस पर ये रुद्राक्ष, वरमुद्रा, शिला और दंड धारण करके बैठते है।

(४) शुक्र—भृगु गोत्र के ब्राह्मण हैं। इनका भी आसन कमल है।

---

*१ शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसा शमादित्याश्च राहुणा। इत्यादि

वर्ण श्वेत है। हाथो में वही वस्तुएँ धारण किये है जो बृहस्पति धारण कर रहे है। इनके वस्त्र भी श्वेत है।

(५) शनि––कश्यप गोत्र के शूद्र है। वर्ण कृष्ण। काले वस्त्र धारण करते है। चार हाथों मे वाण, वर, शूल और धनुष लिये है। इनका वाहन गीध है।

हम पहले बता आये है कि इन पाँच आधुनिक ग्रहों के अतिरिक्त प्राचीन भारत के मनीषी सूर्य, चन्द्रमा, राहु और केतु (चन्द्रमा की ही दो अवस्थाये) को भी ग्रह मानते है। इन सबके लिए उन्होने वाहनों, वर्णों और वस्त्रो के वर्णों की व्यवस्था की है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि ये चार ग्रह नहीं है। सूर्य-नक्षत्र है। चन्द्रमा उपग्रह है। राहु और श्वेत चन्द्रमा के ही श्वेत और कृष्ण पाट है। परन्तु अभी इसका फलित ज्योतिष पर कुछ भी प्रभाव पड़ता नहीं दिखलाई पड़ता।

जाप के लिए प्रत्येक ग्रह का एक मंत्र भी कहा गया। मंगल का मंत्र, ओम् हूँ श्रीं मङ्गलाय नमः है; बुध का, ऊँ ऐं श्रीं श्रीबुधाय नमः; बृहस्पति का, ऊँ ऐं क्लीं बृहस्पतये नमः; शुक्र का, ऊँ ह्री श्रीं शुक्राय नमः और शनि का, ऊँ ऐं ह्री श्री शनैश्चराय नमः। जाप के साथ पूजा और हवन का भी विधान है। जिस ग्रह का जो वर्ण होता है, उसी रंग की वस्तुएँ पूजा में लगाई जाती हैं। इन नवग्रह की दोष-शान्ति के लिए साधारण उपचार के रूप के विशेष-विशेष रत्न धारण करने का नियम कहा गया। मङ्गल के लिए प्रवाल (मूँगा), बुध के लिए मरकत, बृहस्पति के लिए पुष्पराग, शुक्र के लिए हीरा और शनि के लिए नीलकान्ति मनि। यही नहीं, 'सुश्रुत' में नव बालग्रह की एक दूसरी अनोखी कल्पना मूर्त कर ली गई।

आकाश की सैर

ज्ञानशंकर ने यंत्र का चक्र घुमाते हुए कहा—"तुम इसे आश्चर्य कह सकते हो, परन्तु अभी थोड़ी देर मे तुम जो देखोगे, उस पर तुम्हे हठात् विश्वास करना होगा। अभी कुछ मिनटो के पश्चात् हम एक बड़ी यात्रा के लिए निकल खड़े होंगे। जानते हो, यह यात्रा कितनी बड़ी होगी।"

मैं चुपचाप उसके विचित्र यंत्र को देख रहा था। वह मेरी समझ मे आ रहा हो, यह बात नही। वास्तव मे उसकी बनावट इतनी विचित्र थी कि वह मन को अपनी ओर खीच लेती थी।

अपनी बात को अनसुनी समझना ज्ञानशंकर को कभी अच्छा नहीं लगता था, इस बात को मै जानता था। परन्तु अभी मै उसके विचित्र यंत्र मे ही उलझा हुआ था।

उसने फिर कहा—"देखो, हम अब आकाश की सैर करेगे। परन्तु वास्तव मे आकाश क्या है? यह इसी सृष्टि का तो दूसरा नाम है जिसका विस्तार अनन्त है। यह तो तुम जानते ही हो कि पुरानी खोजों ने उसे पृथ्वी की तरह गोल सिद्ध कर दिया है। तुमने आईसाइन का नाम सुना है।"

"हाँ," मैंने संक्षेप मे कहा।

"पुरानी बात है", उसने कहा—"परन्तु हम अब भी उसका आधार लेकर कह सकते है कि हमे एक ऐसे वृत्त की यात्रा करनी होगी जिसका व्यासार्द्ध पृथ्वी और सूर्य के अन्तर से ६०,००,००,००,००,००० गुना है। यह १,००,००,००० प्रकाशवर्ष हुआ। इससे दुगना विश्व का विस्तार है और फिर उसकी परिधि।"

"डा० सिल्वास्टीन..." मैंने कहा।

बात काटकर उसने कहा—"हाँ...यह भी पुरानी खोज है। क्या तुम्हे आश्चर्य नहीं होता, हम उन पुराने ज्योतिषियों से कितना आगे बढ आये हैं। केवल कुछ ही बाते ऐसी है, जो अब सच रह गई है। इस डाक्टर की यह बात भी ऐसी ही है।"

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखकर कहा—"परन्तु क्या पृथ्वी का आकर्षण हमे ऊपर उठने देगा...।"

उसने कहा—"क्यों नही। पतंगे, गुब्बारे और वायुयान किस प्रकार पृथ्वी के आकर्षण से मुक्त हो जाते है। वायुयान ४-५ मील ऊँचा उठ लेता है। पतंग इससे भी ऊँची जाती है। गुब्बारे मे बैठकर मनुष्य ७ मील तक हो आया है। यह और अधिक पुरानी बात है। १८६६ की घटना है। गुब्बारे में केवल दो साहसी मनुष्य थे ग्लेशर और काक्सवेल। सात मील पहुँचकर ठंड इतनी अधिक हो गई कि ग्लेशर मूर्च्छित हो गया। काक्सवेल के अंग भी ठिठुर गये परन्तु उसने साहस करके हिलने-डुलने का प्रयास किया और गुब्बारे का वाल्व अपने दाँतों से खोला जिससे कुछ गैस निकल गई और गुब्बारा नीचे उतर सका। परन्तु अकेला गुब्बारा तो २२-२३ मील ऊँचा पहुँच जाता है। प्रयोगों के लिए वैज्ञानिकों ने अनेक बार ऐसे गुब्बारे छोड़े हैं। ये सब पृथ्वी के आकर्षण से मुक्त होकर ही ऊपर उठे होंगे।"

मैंने पूछा—"मुझे तुम्हारा यंत्र जूलिस वर्न के उस प्रसिद्ध उपन्यास की याद दिलाता है जिसमें उसने चन्द्रमा तक यात्रा की थी। क्या उसी की तरह इसमें हम तोप के गोले की तरह दागे जायँगे?" मैं व्यंग्य से मुसकराया।

"नहीं, मुझे वर्न का ढंग पसन्द नहीं। उसमें धक्का बेतरह लगता

था। Projectile को प्रारम्भिक गति देने के लिए जितनी शक्ति की आवश्यकता थी, उतनी शक्ति मेरे इस यान को नही चाहिए। तुमने वेल्स (H. G. Wells) की पुस्तके पढी होगी। मेरी समझ मे वेल्स का ढंग वर्न के ढंग से कही अच्छा था। उसमें उसने एक तत्त्व केवोराइट (Cevorite) की कल्पना की थी जिस पर पिडो के आकर्षण का कोई प्रभाव ही नही पडता था। उसके यान पर उसी तत्त्व की चादर ढकी थी। उसका यंत्र भी अधिक अच्छा था। उसका रूप गोले की तरह था।"

मैने कहा—"और होवर्थ . . .।"

"हाँ, राकेट . . ." वह मुसकराया—"वह तो केवल महायुद्ध के मनीषियों के मस्तिष्क मे ही रहा। उस विचार को आगे तो किसी ने बढ़ाया ही नही . . . . . .।"

क्षण भर मै चुप रहा। फिर मैने कहा—"जी तो चाहता है कि इस यात्रा में मै भी तुम्हारा साथ दूँ, परन्तु यदि कहो तो अपने मन का ढंग भी बतला दूँ।"

"बताओ।"

मुझे "मार्कट्वेन के ट्रेम्प अब्राड" (आवारे) की कहानी याद आ रही है। मार्कट्वेन माउन्ट ब्लोंक पर चढ़ना चाहता था। उसी समय पर्वतारोहियों का एक दल Chamonix स्थान के सामने की ढाल से पर्वत पर चढ़ रहा था। ट्वेन उसी के साथ हो लिया। परन्तु कैसे? उसने एक आदमी के हाथ से दूरदर्शक ले लिया और उसका मुँह उस दल की ओर कर दिया। फिर जैसे-जैसे वह दल ऊपर चढ़ता जाता महाशय मार्कट्वेन प्रसन्न होते जाते और अपने साथियों को साबाशी देते जैसे आप भी उसी दल में हों। जब दल चोटी पर पहुँच गया

तो इन महाशय ने प्रसन्नता की वह किलकारी दी कि लोग काम-काज छोड़कर इन्हें सम्हालने दौड़े।"

ज्ञानशंकर ने अट्टहास किया। मै भी उसमे सम्मिलित हो गया। उसने हँसते-हँसते कहा—"वाह भाई, ढंग तो अच्छा रहा, परन्तु इस यंत्र मे मै अपने साथ तुम्हे भी बलि का बकरा बनाना चाहता हूँ।"

मैने मुँह बनाकर कहा—"इस बात से मुझे कोई प्रसन्नता नही। मेरा यंत्र दूरदर्शक है। जहाँ तुम महीनों, वर्षों मे पहुँचोगे वहाँ पहुँचने मे मुझे शून्य मे भी कम समय लगता है। तुम्हारी तरह मेरे सिर मे प्राण देने का पागलपन नही है।"

तभी ज्ञानशंकर ने अट्टहास किया और उसका यंत्र भयानक शब्द करने लगा। उसने मुसकराते हुए मेरे मुँह की ओर देखा और मुझे सामने के एक विचित्र यंत्र की ओर संकेत किया।

क्षण भर देखकर मैने कहा—"जान पड़ता है, हम घूम रहे है। क्या यह हमारा यान लट्टू की तरह चक्कर खा रहा है?"

"हाँ", उसने एक विचित्र चक्र पर हाथ डालते हुए कहा—"यह यंत्र कई गोलो के परतों का बना हुआ है जो परस्पर विपरीत गति में घूम रहे है। जब इसकी गति अधिक तीव्र हो जायगी तो इस यंत्र पर पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव नष्ट हो जायगा और हमारा यंत्र ऊपर उठने लगेगा।"

सामनेवाले दर्पण में हमारा प्रतिबिम्ब विचित्र तीव्रता से घूम रहा था यद्यपि हम उसी तरह एक स्थान पर बैठा रहना अनुभव कर रहे थे। ज्ञानशंकर ने मेरे कान में झुककर कहा—"हम ऊपर उठ रहे हैं। तुम बगल के यंत्र में देख सकते हो।"

हम तीव्र गति से ऊपर उठ रहे थे। असख्य लोगो की भीड़ जो इस यात्रा में हमारा अभिनन्दन करने आई थी, उसकी करतल-ध्वनि,—कुछ भी सुनाई नही पड़ता था, न धक्का ही लगा। हम एकदम तैरकर इतने ऊपर उठ गये कि गौरीशंकर की ऊँची चोटी हमारे पैरों के नीचे दिखलाई पड़ती थी।

मैंने ज्ञानशंकर से पूछा—"क्या हम चल रहे है ?"

"वह तो बग़ल के यंत्र मे देख लो। परन्तु हम इसे चलना या उडना कुछ भी नही कह सकते। यह सब शब्दावली पृथ्वी की है जहाँ प्रत्येक हिलने-डुलने में पृथ्वी के आकर्षण का हाथ रहता है। सच तो यह है कि हम इस यंत्र की गति को किन्हीं भी सीधी अथवा वक्र रेखाओं-द्वारा चित्रित नही कर सकते। हम चल भी रहे है, नही भी चल रहे हैं।"

परन्तु उधर बग़ल का यंत्र बतला रहा था कि हम अत्यन्त आश्चर्य-जनक गति से ऊपर उठे जा रहे है।

सहसा ज्ञानशंकर ने कहा—"वह देखो, हम पृथ्वी को छोड़ आये। क्षण भर में हम उसकी आकर्षण-परिधि से निकल जायेंगे। तब हम प्रकाश की गति से चल सकेगे।"

"तब तो कुछ भी देखना-भालना कठिन होगा।"

ज्ञानशंकर ने कहा—"यात्रा लम्बी है। बाद को हमें यान की गति प्रकाश की गति से भी सैकड़ों गुना अधिक करनी होगी। कम करना ठीक नही होगा। परन्तु फिर भी अभी मैं गति को कुछ कम कर दूँगा।.... हाँ, जिस यंत्र में तुम देख रहे हो, उसकी चाल को घटा देना। फिर जो तुम देखना चाहोगे, वह देर तक देख सकोगे। तो, हम चन्द्रमा तक पहुँच गये।"

चन्द्रमा तक। पृथ्वी से २,४०,००० मील दूर।

"क्या तुमने दर्पण की चाल धीमी कर दी ?"

"हाँ ।"

"देखो, हम चन्द्रमा को छोड गये। परन्तु तुम्हारे दर्पण मे वह दिखलाई पड़ रहा है . . . ।"

मुझे कवियो की पक्तियाँ याद आई। सचमुच कवि झूठे है, विज्ञान ही सत्य है। कहाँ सुन्दरियो के मुख का उपमान, कहाँ ऊँचे पहाडोंवाला सामने का चन्द्रमा।

चन्द्रमा ठोस, कठोर, विशाल श्मशान की तरह हमारे सामने था। मै ज्ञानशंकर से कुछ पूछना ही चाहता था कि वहाँ जीवधारी प्राणी है कि नहीं, परन्तु सहसा मुझे इस प्रश्न का उत्तर मिल गया। मुझे अनेक विचित्र प्रकार के जीव-जन्तु चन्द्रमा के धरातल पर रेंगते हुए दिखलाई दिये। सचमुच वे विचित्र प्रकार के थे । उनमे कुछ बिलों के भीतर घुस रहे थे और हमें देखकर रुक गये थे, कुछ के उत्सुक मुख हमारी ओर उठे हुए थे। मेरे मुँह से आश्चर्य की चीख निकल गई।

ज्ञानशंकर मेरे विस्मय का अर्थ समझ गया। उसने मेरी ओर मुसकराते हुए कहा—"वेल्स ने ठीक सोचा था। चन्द्रमा पर इस समय इसी तरह के जीवधारी निवास करते है जैसे तुम सामने के दर्पण में देख रहे हो। तुम्हें आश्चर्य है कि ये हमारी तरह नही हैं। हाँ, परन्तु पृथ्वी पर भी ऐसे अनेक प्राणी है जो हमारे-जैसे नही है। हमें आकाश के इन सब पिंडों में अपने ही भाँति के मनुष्य देखने के लिए उत्सुक न रहना चाहिए। पहले यहाँ कुछ-कुछ हमारे-जैसे प्राणी भी रहते थे परन्तु अब वह समय अधिक दूर चला गया। तुम जानते हो चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी के आकर्षण से बहुत कम है। इससे उसके ऊपर का वातावरण बहुत समय हुआ, लगभग उसे छोड़ गया। अब जो थोड़ी-सी हवा है, उसमे इसी प्रकार के प्राणी रह सकते हैं।"

"क्या यहाँ हवा है?"

"है। परन्तु उस रूप मे नही जिससे तुम साधारणतया परिचित हो। चन्द्रमा के जो भाग सूर्य के विपरीत है, वहाँ तो वह बर्फ़ के गोलो की तरह जम गई है। हाँ, जो भाग सूर्य के सामने है, वहाँ वह गैस के रूप मे है, परन्तु उसका घनत्व बहुत कम है।"

इसी समय चन्द्रमा के धरातल से कुछ धुआँ उठता हुआ दिखलाई पड़ा। मैंने इस पर आश्चर्य प्रकट किया। ज्ञानशकर उस समय एक विचित्र प्रकार की तोप को घुमा रहा था। उसने कहा—"मै पहले भूल गया था कि हमने पृथ्वी के अपने साथियो से वादा कर लिया था कि हम चन्द्रमा पर पहुँचकर उनको संकेत करेगे।"

"हाँ, मैंने 'दिग्दर्शन' मे पढा था। क्या तुमने इसी लिए गोला दागा था।"

"हाँ, यही संकेत निश्चित था।"

"तब तो वे समझ गये होंगे। वे बडे प्रसन्न हुए होंगे।"

ज्ञानशंकर के मुख पर कुछ गंभीरता छा गई। उसने कहा—"शोक, मैं कोई ऐसा आविष्कार नही कर सका जिसके द्वारा इस महाशून्य के भागों में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता। यदि ऐसा सम्भव हो गया होता तो हम इस यान पर बैठे-बैठे अपने सम्बन्धियों से बातें कर सकते।"

में इस समय अपने इतिहास के पाठ को मन ही मन दुहरा रहा था। एक समय ऐसा था कि मनुष्य आकाश की सैर की कल्पना करते थे। दो सहस्र वर्ष पहले योरप के लेखक लूसियन ने Icaromenippus की कल्पना की थी। इस व्यक्ति ने आकाश की सैर करने का जो ढंग निकाला था उसे सोचकर मुझे हँसी आ रही थी। उसने एक

बड़े उकाब को पकड़ा और एक बड़े गिद्ध को। पहले उसने उकाब का दाहिना पख काट लिया, फिर गिद्ध का बायाँ पख। इन्हे उसने एक फीते से अपने कन्धे मे बाँध लिया। पखो के सिरो पर उसने बड़े-बड़े काँटे लगाये जिन्हे वह हाथ मे भर सकता था। फिर उसने पृथ्वी पर धीरे-धीरे उड़ना सीखा। अन्त मे एक दिन वह चन्द्रमा पर पहुँच गया। यहाँ तक पहुँच-कर मै अपने मन मे मुसकराया। सचमुच हम इस व्यक्ति मे अधिक सौभाग्यशाली है। हम चन्द्रमा को छोडकर बहुत आगे बढ आये। हमे गिद्ध भी नही बनना पड़ा था।

हमारे चारों ओर अनन्त अन्धकार था। आँख उसे भेद नही सकती थी। मैने सोचा, यहाँ हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो का कुछ भी सहारा नही ले सकते। यदि हमारे-जैसे कोई अन्य यात्री इस सृष्टि की यात्रा करते हो और हमारे पास से निकल जायँ, तो वे फिर चाहे तोपे छोड़े, हम उनका पता नही लगा सकते। परन्तु क्या अन्य यात्रियो का मिलना सम्भव है, मै इस कल्पना पर मुसकराया।

जहाँ हम यात्रा कर रहे थे, वहाँ का रग कोलतार से अधिक काला था। इस अन्धकार-पट पर चारों ओर बराबर तारे छिटके थे। हम ऐसे देश मे पहुँच गये थे जहाँ न दिन था, न रात। यहाँ आकाश भी नहीं था, क्योंकि जिस आकाश से हम परिचित है, वह नीला है। परन्तु यहाँ नीलिमा का नाम भी नही। नीलिमा का सम्बन्ध केवल वायुमंडल से है। यहाँ वायुमंडल कहाँ। करोड़ों मील तक धूल और जल अथवा गैस का एक भी कण नही। फिर आकाश की परिचित नीलिमा दिखलाई नहीं पड़े तो आश्चर्य ही क्या?

दूर से एक फुलझड़ी हमारी ओर आती दिखलाई दी। सारा काला आकाश प्रकाश-विन्दुओं से भर गया।

ज्ञानशंकर बड़ा व्यस्त जान पडता था। मुझे उसकी चिन्ता पर आश्चर्य हुआ। परन्तु यह क्या? सहसा उसने क्या किया ? हमारा यान एकदम इस प्रकार किसी ओर गिरने लगा जैसे कबूतर पंख बन्द करके ढेले की तरह गिर पड़े। मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। दर्पण में फुलझड़ी धीरे-धीरे अदृश्य हो रही थी ?

"उल्काचक्र।" उसने कहा—"यदि हम क्षण भर विलम्ब करते तो हमारा यान इनसे टकरा जाता।"

"मुझे कँपकँपी आगई। करोड़ो-अरबो मील ऊँचे या नीचे से कही किसी ओर गिरने की कल्पना कीजिए। यहाँ जीवन का तो प्रश्न ही नही। वह तो यान के चकनाचूर होते ही समाप्त हो जाता। परन्तु फिर न जाने किस बात के लिए इतना भय!"

"हम कहाँ गिरते?"

ज्ञानशंकर अब अधिक चैतन्य था। उसने चक्र को एक ओर घुमाते हुए कहा—"अरे, यह बात जानने के लिए हम जीते नही बचते! फिर कोई इसकी चिन्ता ही क्यो करेगा!"

मैं चुप था।

क्षण भर ठहरकर उसने कहा—"कदाचित् हम इस सृष्टि के केन्द्र में पहुँच जाते। हम अभी उसके ऊपर-ऊपर धरातल पर चल रहे हैं। केन्द्र में पहुँचने का यही एक ढंग है।"

उसने हँसते हुए कहा—"कहो तो यान को गिरने दिया जाय।"

मैंने चिल्लाकर उत्तर दिया—"यही कौन कम पागलपन है। फिर हम शायद लौट भी नही सकें!"

"यही बात! हम सृष्टि के केन्द्र में सदा के लिए प्रतिष्ठित हो जायँगे, यही क्या कम है।"

मैंने व्यंग्य से कहा—"परन्तु यह बात तुम्हारे उस छोटे-से संसार के समाचार-पत्रों मे नही छपेगी और तुम्हे अभिनन्दन-पत्र नही मिल सकेंगे।"

"ओह हो! तो तुम समझते हो, यह सब प्रसिद्धि के लिए किया जा रहा है!" उसने अट्टहास किया। "सौ-पचास वर्ष के जीवन के लिए! और वह भी एक क्षुद्र प्राणी का!"

मैं हतप्रभ हो गया।

"हम मगल ग्रह की ओर बढ रहे है। यद्यपि हम अभी मंगल पर पहुँचे नहीं है, परन्तु बहुत पास है।"

"दर्पण मे कुछ दिखलाई नही देता।"

ज्ञानशंकर ने दर्पण को एक विशेष दिशा मे मोड दिया। अब उसमे मगल दिखलाई पड़ने लगा था।

उसने कहा—"हम इस ग्रह को नगी आँख से देख रहे है, दूरदर्शक से नही। दूरदर्शक मे यह उलटा दिखलाई पड़ता है। इसी से अब हमे थोड़ा अन्तर दिखलाई पड़ता है। देखो उत्तर-ध्रुव बर्फ से नही जमा है। दक्षिण-ध्रुव बर्फ़ से जमा है। गर्मियो मे यह बर्फ पिघलने लगती है।"

मुझे मंगल के सम्बन्ध मे पृथ्वी के वैज्ञानिकों के मत स्मरण आ रहे थे। क्या वहाँ मनुष्य है या अधिक बुद्धिमान् प्राणी है? क्या ये मगल की नहरें है? ये नहरें तो नही जान पड़तीं!

ज्ञानशंकर के लिए मेरे मन की अवस्था समझ लेना कठिन नही था। उसने कहा—"तुम जो सोच रहे हो, वह मै समझता हूँ। वही मनुष्यों की बात! जैसे हम ही सारी सृष्टि मे सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणी हों और यह सारा सृष्टि-चक्र हमारे लिए ही रचा गया हो। परन्तु यह हमारा भ्रम है। यह सृष्टि-चक्र और उसका विधाता हमारे लिए उतनी ही

चिन्ता करता है जितनी किसी मधुमक्खी के जीवन-मरण और पालन-पोषण के लिए।"

अब मगल अधिक पास आगया है। हम उसे पूरा-पूरा देख भी नही सकते थे। ध्रुव हमारे सामने से ओझल हो गये थे।

"हाँ, तो तुम मनुष्य की बात जानना चाहते थे। देखो यहाँ कोई भी मनुष्य दिखलाई नही पड़ता। कदाचित् कोई जीव भी नही है। जिन्हे हम नहरे समझते थे वे बड़े-बडे काले गड्ढे है जो धरातल के जमने और कठोर पड़ने के समय पड़ गये थे। ध्रुवों की बर्फ़ पिघलकर इन गड्ढो में भर जाती है। इससे अधिक कोई क्रियाकलाप यहाँ नही होता जान पड़ता।"

मैंने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा—"तब रसल वेलेस (Russel Wallace, Alfred) की बात ही ठीक मालूम होती है।"

"क्या ?"

"यही कि इस सृष्टि मे कही भी जीवन नहीं है !"

ज्ञानशकर ने अट्टहास किया।

"हमे चिन्ता क्यो हो कि जीवन है या नही। कौन कह सकता है इन सहस्रो सूर्यो की परिक्रमा करते हुए असंख्यों पिडो में से दो-दस अथवा हजार में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न नही हुई हो जिनमें जीवन का विकास होता है।"

"परन्तु पृथ्वी पर तो हम समझते थे कि मंगल मे ज्ञानवान् मनुष्य होंगे जिन्होंने नहरें बनाई होंगी !"

"यदि हम मंगल से पृथ्वी को वेध करे तो क्या हम यह निश्चयरूप से कह सकते हैं कि लंका भारतवर्ष से अलग है या यही कि काठियावाड़ प्रायद्वीप है। यही बात हमारे उस भ्रम के सम्बन्ध में भी लागू है।"

मंगल दृष्टि-पथ से निकल चुका। ज्ञानशंकर ने मुझे बतलाया कि उसने यान की गति सहस्रों प्रकाशवर्ष कर दी थी अब हम शीघ्र ही सौर्य-मंडल से निकल जायँगे।

"हाँ", ज्ञानशंकर ने कहा—"यह सृष्टि एक बड़ी तिलिस्म है। यह आश्चर्य मे भरी पड़ी है। जब हम सौर्य-चक्र को पीछे छोड़कर नीहारिकाओं मे प्रवेश करेगे तो हमे इतने अधिक आश्चर्य दिखलाई पड़ेंगे, कि हम कल्पना भी नही कर सकते। परन्तु आकाश इन नीहारिकाओं पर ही समाप्त नही है। हम और भी आगे जायँगे। तब इन आश्चर्यों की संख्या कही अधिक बढ़ जायगी। देखो एक दृष्टान्त देता हूँ। यह सृष्टि तो नारंगी की तरह है ही। अतएव किसी भी ग्रह-तारे का प्रकाश इसका चक्कर प्रत्येक दिशा मे करता है। कही न कही कोई स्थान ऐसा आ जाता है, जहाँ इस प्रकाश की किरणे परस्पर काटती हुई चली जाती है। इस स्थान पर उस पिड का प्रतिबिम्ब बन जाता है। बहुधा यह बहुत ही धुँधला होता है और हमें दिखलाई नही पड़ता परन्तु सब तारे तो इतने धुँधले चित्र नही बनाते। कहीं-कही यह प्रतिबिम्ब इतना चमकीला होता है कि सत्य का धोका होने लगता है। सम्भव है हम कितने ही पिंडों को यह समझकर छोड़ जायँ कि हम इनसे टकरा न जायँ। परन्तु वे वास्तव मे पिंडों की छायामात्र हो और उनसे टकराना सम्भव ही नही हो।"

"क्या हमे अपने सूर्य का भी इस प्रकार का प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ेगा? क्या यह सम्भव है?"

"अवश्य!"

"परन्तु क्या हमारे मार्ग में कोई बाधा नही है? क्या हम इसी तरह बढ़ते चले जा सकते है?"

ज्ञानशंकर ने कहा—"दीपंकर जब बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए तिब्बत गये थे तो कितने वर्ष के थे, जानते हो? उनकी आयु अस्सी वर्ष पार कर चुकी थी। क्या वे जान सकते थे कि वे अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकेंगे? ज्ञान का जिज्ञासु जीवन-मरण के प्रश्न को सामने नही लाता । हो सकता है, हम इस यात्रा में समाप्त हो जायें । हो सकता है हम किसी पथभ्रष्ट पिंड से टकरा जायें । सब प्रकार की सम्भावनायें है परन्तु उनका भय करके हम इस यात्रा के आनन्द और गौरव को घटा तो नहीं सकते!"

मै चुपचाप दर्पण देखने लगा। वहाँ कोई नया पिंड उदय हो रहा था। इस यात्रा के आनन्द और गौरव मे भाग लेने के लिए मुझे भी किसी पिड से टकराकर प्राण देना पड़े, यह मेरे लिए चिन्ता और शोक की बात थी।

"बृहस्पति!"

"हाँ।"

"यह लाल धब्बे...हाँ, यह ग्रह अभी पूरी तरह ठोस नहीं हुआ है। इसका प्रत्येक भाग अपनी कक्षा पर घूमता है परन्तु पूरा पिंड भी घूमता है अतः इस गति से स्थान का अन्तर नही पड़ता।"

हमारे सामने इतना बड़ा प्रसार था जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। सचमुच, बृहस्पति वृहद् है, मैंने सोचा। इसके सामने हमारी पृथ्वी कितनी वामन लगेगी!

"बृहस्पति का वलय क्या हुआ?" मैंने ज्ञानशंकर के ऊपर झुककर उससे पूछा।

"बृहस्पति का वलय।" उसने कहा "तुम उसे नहीं देख सकते। यह बड़े धूल के जैसे छोटे कणों का बना हुआ है जो इस ग्रह की परि-

क्रमा करते है परन्तु इनका छोटा आकार हमारी सहायता नही करता। पृथ्वी से यह वलय इसलिए दिखलाई पड़ता है कि हम बृहस्पति को प्रकाशमान देखते है। यहाँ हमे कोई प्रकाश नही मिलता। समझे ! वलय के कण प्रकाश को विच्छरित करते है, इससे चमककर दिखलाई पड़ने लगते है। लो, अब हम वलय मे घुस गये।"

मैने दर्पण मे देखा ! उसमे सहस्रो छोटे-छोटे कण हमे घेर-कर उड़ रहे थे।

"क्या हम इससे टकरायेगे नही।"

"इनका घनत्व बहुत कम है। गति भी बहुत कम। हमे कोई हानि नही होगी !"

"परन्तु क्या हम ग्रह पर उतर रहे है।"

"नही, मै उसके आकर्षण को बचाकर निकल जाऊँगा। यद्यपि अब भी हम इस ग्रह की आकर्षण-परिधि मे है परन्तु अभी आकर्षण कम है।"

दर्पण मे रेत के कण उडना बन्द हो गये। कदाचित् हम वलय को छोड़ गये थे। थोड़ी देर बाद हम फिर अन्धकारपूर्ण आकाश मे पहुँच गये। यहाँ से शनि दिखलाई पड़ता था। ज्ञानशंकर ने कहा—"यह अभी सैकड़ों प्रकाशवर्ष दूर है। परन्तु तुम इसे यहाँ से देख सकते हो। मै इस ग्रह के पास पहुँचकर चक्र को रोक दूँगा और हमारा यान भी शनि के उपग्रहों की भाँति उसकी प्रदक्षिणा करने लगेगा।"

परन्तु उससे पहले ही एक ऐसा आश्चर्य घटित हो गया जिसकी सम्भावना ज्ञानशंकर को भी नहीं थी।

हम सहसा एक विचित्र दिशा में विचित्र गति से बढ़ने लगे। दर्पण में कुछ भी नवीन बात दिखलाई नहीं पड़ रही थी। ज्ञानशंकर ने चक्रों

को इधर-उधर घुमाया परन्तु जिस दिशा मे वह यान को चलाना चाहता था, उस दिशा में यान नहीं जा सका।

"क्या बात है ?" उसने चिन्ता से कहा, और वह एक बार फिर यंत्रों पर झुक गया।

थोड़ी देर के बाद उसने सिर उठाया। कुछ सोचकर और सामने के आकाश के मानचित्र पर दृष्टि डालकर उसने कहा—"हाँ, केतु है। यह हेलीकेतु है। हम इसकी पूंछ मे आगये है।"

"तब !"

"कोई भय नही ! यह पूँछ हमारे पथ को थोडा-सा टेढ़ा कर सकती है। इससे अधिक हानि की सम्भावना नही !"

उसने दर्पण को चक्कर दिया। हेलीकेतु सामने आगया।

"पूँछ !"

"हाँ, यह करोड़ो मील लम्बी है। केतु की नाभि से एक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ निकल रहा है जो सूर्य के प्रकाश के दबाव के कारण पूँछ के रूप मे उसकी विपरीत दिशा मे मुड़ जाता है। अगले वर्ष पृथ्वी-वाले इस केतु को देख सकेगे।"

"सच !" मैने आश्चर्य से कहा—"तब हम इसे एक वर्ष पहले देख रहे है।"

"हाँ," उसने कहा—"१९८४ है। यह केतु पृथ्वी पर प्रत्येक ७५ वर्ष बाद दिखलाई पड़ता है। १९१० मे दिखलाई पड़ा था !"

किसी ने हमारे यान को हिला-डुला दिया। फिर वह अपनी निश्चित गति से चलने लगा।

ज्ञानशंकर ने कहा—"हम हेलीकेतु की पूँछ से निकल गये। यह भी

एक घटना है। यदि किसी केतु की नाभि से टकरा जायँ, तो फिर मरण निश्चय है।"

मैंने कहा—"इस मौत के भूत को साथ लेकर यात्रा करना कठिन है। तुमने पहले इसका उपचार ढूँढ लिया होता।"

ज्ञानशंकर ने मुसकराकर कहा—"हो सकता है, कभी कोई ढूँढ ले। परन्तु फिर भी पिड से टकराकर प्राण तो देने ही पड़ेंगे, हाँ, प्राकृतिक मृत्यु का उपचार हो सकता है!"

थोड़ी देर मे हमारा यान शनि का चक्कर लगा रहा था। जो शनि हमे उस नर्तकी-जैसा लग रहा था जिसके वस्त्र तीव्र गति से चक्कर लेने के कारण उड़ रहे हों, वह हमारे सामने था।

शुक्र का जो भाग हमारे सामने पड़ता था, वह अँधेरा था। आधीरात को पृथ्वी के किसी निर्जन स्थान मे जैसी शान्ति और गम्भीरता दिखलाई पड़ती है, वैसी ही गम्भीरता वहाँ थी। मैंने सोचा—कदाचित् शुक्र की दशा भी चन्द्रमा की तरह है। जैसे चन्द्रमा का एक अंश सदा प्रकाशित रहता है, और दूसरा अंश सदा अधकार मे रहता है, वैसा ही यहाँ भी होता जान पड़ता है। परन्तु यह अवश्य था कि कुछ तारों के प्रकाश के कारण वहाँ इतना अन्धकार नहीं था। परन्तु जब ज्ञानशंकर ने कहा—"यह बात नही है। वास्तव में शनि अपनी कक्षा पर घूम जाता है। उसकी दशा चन्द्रमा के समान नही है," तब मुझे आश्चर्य हुआ।

परन्तु एक बात जो अत्यन्त अद्भुत थी। शनि को घेरकर अनेक उपग्रह घूम रहे थे और उनमें से कई पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था। यद्यपि यह प्रकाश बहुत कम था, परन्तु फिर भी वे उस प्रकाश में चाँदी की तरह झलमलाते थे।

ज्ञानशंकर ने कहा—"लोग शनि को गाली देते है परन्तु सच तो

यह है कि यदि मुझे किसी एक ग्रह पर बसने के लिए कहा जाय और वहाँ जीते रहना सम्भव कर दिया जाय, तो मैं शनैश्चर को ही चुनूँगा।"

"क्यों?" मैंने जिज्ञासा की।

"यहाँ का दृश्य असाधारण है। इतने उपग्रहों का एक स्थान पर इकट्ठा हो जाना एक प्राकृतिक चमत्कार है। यदि शनि पर मनुष्य होंगे तो वह इन कई चन्द्रमाओं के उदय-अस्त का आनन्द एक ही अवसर पर ले लेते होंगे। हाँ, यदि मनुष्य हुए।" कुछ व्यंग्य से वह मुसकराया।

"परन्तु अभाग्य तो यह है कि मनुष्य नही है" मैंने कहा—"और उससे भी बड़ा अभागा कौन होगा जो यहाँ आकर भी यह चमत्कार नही देखेगा।"

ज्ञानशंकर मुसकराया।

उसने कहा—"हमारे पास समय कहाँ है। अभी सारी सृष्टि पड़ी है। हम अभी इतना ही चल सके है जितना एक छोटी-सी चीटी एक दिन में पृथ्वी पर चल सकेगी। अभी इतना अवकाश नही। हाँ, किसी दूसरी यात्रा में यह सम्भव है।"

'दूसरी यात्रा में!' मैं उसके इस असम्भव आदर्शवाद पर मुसकराया पहले इस यात्रा में ही प्राण बच जायँ, तो बहुत है।

ज्ञानशंकर चक्र घुमाकर यान की गति बढ़ा रहा था। वह चुप था।

"अब उरण, वरुण और कुबेर!" मैंने कहा।

ज्ञानशंकर ने कहा—"शोक, इस यात्रा में हम इन तीनों ग्रहों को नही पा सकेंगे। वह हमारी यात्रा से इतने हटे हैं कि हम उन तक किसी तरह पहुँच नहीं सकते। हाँ, वरुण कदाचित् हमें लौटते समय मिले!"

"लौटते समय!"

उसने कहा—"इसमें आश्चर्य क्या है? इसी तरह चलते रहने पर ही तो पहुँचेंगे पृथ्वी तक। कदाचित् यही ग्रह उस समय हमें फिर मिलें।"

उसने यान की गति और तेज़ कर दी। अब हम जिस गति से चल रहे थे, उसकी कल्पना करना भी कठिन था। परन्तु आश्चर्य का विषय था कि हमारे चारों ओर के तारे हमे अब भी स्थिर दिखलाई पड़ते थे।

थोड़ी देर में ज्ञानशंकर ने कहा—"हम सौर्यचक्र से निकल गये। अब हम अपनी परिचित नीहारिका में है। वही आकाशगंगावाली नीहारिका। आगे चलकर हमें न जाने कितने सूर्यों के दर्शन होंगे जो कदाचित् इतने ही बड़े है जितना महाभारत के साधारण पात्रों मे घटोत्कच था।"

"क्या हम नीहारिका से बाहर शीघ्र ही पहुँच जायँगे?"

"नही, इसमे कई दिन लगेगे" उसने कहा—"यह यात्रा लम्बी है। तुम विश्राम कर सकते हो। क्या यही कम है कि एक ही दिन में हम सौर्य-मंडल से बाहर निकल आये।

मैंने आँख बन्द करके सोने की चेष्टा की।

परन्तु यह क्या?

मैंने अनुभव किया, हमारा यान प्रकाश की तीव्र गति से नीचे गिर रहा है या किसी विशेष दिशा मे खिचा जा रहा है। भयंकर उत्पात! मेरे सामने का दर्पण बिलकुल स्वच्छ था, जैसे कुछ भी नहीं हो रहा हो। तब क्या हम सचमुच गिर रहे हैं? मैंने ज्ञानशंकर की ओर देखा, वह अर्द्धविमूर्च्छित अवस्था में एक बड़े गोले को घुमा रहा था। यह गोला उसके सामने के चक्र पर जड़ा हुआ था। क्षण भर में एक भयानक दुर्घटना की बात मेरी समझ में आगई। यान की मशीन बिगड़ गई है। किसी यंत्र ने काम करना छोड़ दिया है। अब मृत्यु और हममें कोई अन्तर नहीं। सहसा, एक झटका लगा और सारा यान

झनझना उठा। चक्र टूटकर गिरने लगे और भयंकर झनझनाहट ने हमें वधिर कर दिया। अब मृत्यु बहुत निकट है। पृथ्वी से करोड़ों मील ऊपर महाशून्य में सहारा कहाँ रक्खा है। मै ज्ञानशंकर पर झल्ला उठा—वह तो यह चाह ही रहा था कि सृष्टि के केन्द्र को भी खोज डाले। चलो अच्छा हुआ। अब हम सृष्टि के केन्द्र में पहुँचे। आँखें मूँदकर मैंने अपने मन को ढीला छोड़ दिया। चाहे जो हो।

परन्तु फिर भयंकर झनझनाहट! मैंने आँखें खोल दी।

ज्ञानशंकर मुझे झकझोर रहा था।

"क्यों? क्या सोते थे? दिन को? जान पड़ता है, मुझे देखकर आकाश से गिर पड़े हो।"

अरे, प्राण बचे! तो, क्या यह आकाश की यात्रा दिवास्वप्नमात्र थी!

"हाँ, गिरा तो सचमुच आकाश से ही और तुम्हारे साथ! वाह!"

ज्ञानशंकर ने मुसकराकर कहा—"नही जानता, किस लोक का रस ले रहे थे। भाभी बैठके का दरवाजा नही खोल देती तो मै कुंडी बजाता ही रहता और तुम भला क्यों जगते?"

मेरी पत्नी मुसकराते हुए मुझे देखती हुई भीतर चली गईं। तब यह सब स्वप्न ही रहा क्योंकि ऐसा कोई प्राणी हमारे यान में कब था।

मैंने अपनी गोद से वेल्स की 'दि फ़र्स्ट मेन इन दी मून' उठाकर ज्ञानशंकर पर फेंक दी। किंचित् क्रोध का नाटय करते हुए कहा—"तुम्हारे खगोल-शास्त्र के व्याख्यानों ने और इस वेल्स ने आज मेरे प्राण ले लिये थे। यान तो टूट ही गया था। यदि तुम ठीक समय पर न आ जाते तो मैं सृष्टि के केन्द्र में जा पड़ा होता।"

तुरन्त ज्ञानशंकर के परिचित अट्टहास से कमरा गूंज उठा।

Printed and Published by K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd., Allahabad.